ज्ञान मुक्ति

ज्ञान मुक्ति
श्री भगवत्
श्री भगवत् पब्लिकेशन्
तिरूचेन्दूर

ग्रंथ परिचय

ग्रंथ का नाम	:	ज्ञान मुक्ति
लेखक	:	श्री भगवत्
एडिशन	:	पहली छपाई – डिसम्बर 2007 दूसरी छपाई – नवम्बर 2008
दाम	:	रू.50/– (+20 पोस्ट में)
छपाई	:	प्रवाहम पब्लिकेशनस 31, रामलिंग स्वामी स्ट्रीट अम्मापेटै, सेलम – 636 003. 0 99942 – 05880, 0 97891 – 65555
पुस्तक वितरण	:	प्रवाहम पब्लिकेशनस 31, रामलिंग स्वामी स्ट्रीट अम्मापेटै, सेलम – 636 003. 0 99942 – 05880, 0 97891 – 65555
वेब पता	:	www.pravaagam.org

लेखक परिचय

श्री भगवत् अपने अठारहवींआयु में, अर्थात् कालेज में पढ़ते काल से आध्यात्मिकता में रूचि रखते हैं । आध्यात्मिक ग्रथों को ढुँकर स्पष्ट सीख लेते हैं ।

भगवान रमण महर्षि की ओर आकर्षित हैं । जे.के. जैसे कई ज्ञानियों के दर्शन किए हैं ; उनके भाषणों को उनके मुहँ से सुना करते हैं। कई सन्यासियों तथा ज्ञानियों के यहाँ जाकर उनसे बातें करके निश्चलता प्राप्त करते हैं ।

आध्यात्मिक ज्ञानी तेनी स्वामी जी से कई काल तक संपर्क रखते हैं; आध्यात्मिक सत्संगों में कई वर्षों से भाग लिया करते हैं । उसके फल से अध्यात्म योग साधना न रूकी; आध्यात्मिक प्यास नहीं बुझी ।

वकील उद्योग एक तरफ़ दूसरी ओर तो सत्य के सच्चे रूप पाने की खोज़ । चालीस सालों की लगातार आध्यात्मिक विचार । दिन रात वही विचार ।

उनकी तीव्र खोज़ के फलस्वरूप अचानक एक दिन सत्य का दर्शन किया । स्पष्टता मिल गई । खोज़ की समाप्ति हुई ।

अपने अठावन की आयु में ज्ञान प्राप्त कर लिया । कई वर्षों के परिश्रम के फल से प्राप्त ज्ञान में खुशी होकर आनन्दनृत्य न किए हैं । आश्चर्य मग्न हुए । क्या आधे क्षण में समझने वाली बात को जानने के लिए चालीस वर्ष अथक परिश्रम किया ? सोचकर आश्चर्य चकित हो गए । उन्होंने जान लिया है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए ज़्यादा परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है । उन्होने यह भी समझ लिया कि आध्यात्मिक रूचि रखने वाले को यह आसानी से प्राप्त होता है । इस ज्ञान को सब समझने की रीति में सरल रूप में समझाते हैं।

वे अपने आप सरल, मीठे स्वभाव से पूर्ण होने के नाते इस आधार पर जो लोग उनके यहाँ आते हैं, उनकी शंकाओं का विस्तार रूप में समाधान देकर अपने आप जिस प्रज्ञान का अनुभव किया वह इस संसार भर के लोग प्राप्त कर लें – इस भावना से मार्ग दर्शन करते आ रहे हैं।

अक्तूबर 2007

अरंगनाथन, एम.ए.,एम.एड.,
तमिल अध्यापक (रिटायर्ड)
श्री साई निवास
तिरूच्चेन्दूर

लेखक से संपर्क रखने का पता :–
श्री भगवत् पब्लिकेशन,
102, नीतिमन्ड्र वीथी,
तिरूच्चेन्दूर – 628 215.
9944215677

दूसरी छपाई का आमुख

वाळग वळमुडन । अच्छी चीज़ के लिए विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है । उपयोग करनेवाले ही विज्ञापन कर देते हैं । यही इसके लिए प्रमाण है कि बहुत कम ही काल में पहली छपाई में 3000 कापियाँ बेच लिय गयी हैं । सेलम जिला के इलम्पिल्लै के ज्ञान प्रकाशम जी 500 प्रतियाँ खरीदकर सब लोगों को मुफ़्त में देकर संतुष्ट हुए हैं । नागरकोविल के राधाकृष्णनजी 300 प्रतियाँ बेच लिए हैं । "The proof of the pudding lies in the eating " बताते हैं । ' इटली कैसी है ? ऐसे पूछने की आवश्यकता नहीं ! कितने खा लिए हैं – इससे पता लगा जाता है ।

अच्छी खबर समाज को जल्दी मिलनी चाहिए – इस ख्याल से लेखक श्री भगवत् जी पुस्तक छपाने का जो अधिकार है उसे भी त्याग देने को तब तैयार होते हैं जब उसे 'मुफ़्त' में देने पसन्द करनेवाले, लेखक की अनुमति के साथ छपा सकते हैं ।

यह ग्रंथ–साधना करने जन्य ग्रंथ है । पढ़नेवालों के मन को धीरे धीरे पूर्णत्व की ओर ले जानेवाला है ।

यह ग्रंथ (इसे) पढ़नेवाले सब – ' युवावस्था के केवल दस लोगों को मैं पढ़ा सकूँ,–पढ़ने की प्रेरणा दे सकूँ,–ऐसी प्रतिज्ञा लेंगे तो समाज में अच्छा परिवर्तन जल्दी आ जाएगा । जो यह ग्रंथ पढ़ चुके हैं वे इसकी दस कापियाँ अपने पास रखकर बाकी लोगों को भेंट में दे सकते हैं या बेच भी सकते हैं । यह हमारा सामाजिक कर्तव्य है ।

कहते हैं कि एक पुस्तकालय खुलता है तो कई कारागृहों की आवश्यकता नहीं है । पुस्तकालय खुलने की आवश्यकता भी नहीं है । यह किताब ही काफ़ी है ।

आज तक सोचते आ रहे हैं कि 'अच्छे बन जाएँगे तो ज्ञान मिलेगा' । पर 'बुरे गुण दूर हो जाएँगे तो ज्ञान–स्थिति प्राप्त कर सकते हैं – ऐसे सोचना गलत है । ज्ञान प्राप्ति मिलने पर ही दुर्गुण दूर होकर अच्छे बन सकते हैं । ऐसे श्री भगवत् बताते हैं ।

ऐसी खबर की सच्चाई को जान लेने पर हममें बड़ा परिवर्तन होता है । तिरूची शरणकुमार जी के कहने के अनुसार ऐसे 'हमें परिवर्तन करनेवाले' कई खबरें इसमें हैं ।

इस ग्रंथ के अन्तिम पृष्ठ में कहने के अनुसार 'हम पीछे पड़ गए हैं – इसे जान लिए बिना हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । सही मार्ग पर कदम बढ़ाने यह ग्रंथ – यह आह्वान – साथ देगा ।

यह ग्रंथ पढ़नेवाले सब के मन का आह्लाद एक ही जैसे नहीं होगा । एक ही व्यक्ति शान्तिपूर्ण मनः स्थिति में पढ़ते समय जो मन की तृप्ति होती है, वह अशान्ति मनः स्थिति में नहीं मिलती है । ग्रंथ एक ही है, पर, दूसरी बार पढ़ते समय पहली बार से भी अधिक स्पष्टता मिलती है । ' मैं बिल्कुल स्पष्ट हो गया हूँ – ऐसे मनोभाव प्राप्त करने तक पढ़ते ही रहना चाहिए ।

ठीक आराम के बाद भोर में या शान्तिपूर्ण ज़गह में बैठकर पढ़ने पर अनजाने रीति में ही हमारा विचार विस्तार होकर उन्नति पाएगा ।

साधारण लोग भी आसानी से समझ लेने की रीति में ही श्री भगवत् जी की दूसरी पुस्तक '' कवलैकळुक्केल्लाम तीर्वु' – शोकों का समाधान' प्रकाशित हुआ है । उस ग्रंथ को भी एक साथ पढ़ेंगे तो स्पष्ट होने की स्थिति विविध पहलुओं में छढ़ हो जाएगी । कहते हैं कि 'सिर्फ़ पढ़ना ही काफ़ी नहीं है जीवन में पालन करना '– अनुकरण करना भी चाहिए। पर इन ग्रंथ को पढ़ते ही हम अनजाने ही पालन करते हैं । यही चाहिए कि थोडा सा पढ़ना, अपनाकर दोहराना ।

यह नहीं समझ सकते हैं कि होमियोपति के औषध कहाँ कैसे कार्य करते हैं । उसी प्रकार यह ग्रंथ भी हमें परिवर्तित कर देता है । रूचि से पढ़ना और ऊँचा जीवन बिताना चाहिए । समाज ऊँचे संस्कार का बनना है – ये विचार ही हमें चाहिए ।

इस ग्रंथ के अनुसार दीक्षा पाना, पादपूजा और ज्ञानियों के दिन भर का प्रवचनों की आवश्यकता नहीं है । यह ग्रंथ आन्तरिक ऊँचाई के लिए है । आन्तरिक ऊँचाई होने पर बाहरिक ऊँचाई अपने आप आ जाएगी ।

कुछ दशकों में सब चिकित्साएँ घटकर सिर्फ होमियोपति ही रहेगी – वेदाद्री महर्षि ऐसे बताते हैं। उसी प्रकार यह ग्रंथ भी श्रेष्ठ होगा ।

सरल व अच्छे प्रवाह में लिखा गया इस ग्रंथ का अंग्रेजी पब्लिकेशन – Don't Delay Enlightenment - पढ़ना भाग्य की बात है जो अंग्रेजी जानते हैं अगर वे इस अंग्रेजी प्रति को न पढें तो खोना उन्हीं का है ।

आजकल यह मेरा कर्तव्य है कि जिनको मैं जानता हूँ उनसे इसे पढ़ने को कहना । वाळग वळमुडन सम्पतियों से जियें ।

इस ग्रंथ की पहली छपाई को जिन्होंने पढ़ा उनमें कुछ लोगों के रायः–

मैं 'आध्यात्मिकता की खोज में था । आध्यात्मिक विषयों में विरक्त और अतृप्त होने की स्थिति में ज्ञान की प्राप्ति इतना सरल और किसकी खोज़ करना है आदि इस ग्रंथ से मालुम हुआ । इस ग्रंथ को दुनिया भर में फैलाना है । तत्व को क्षितिल किए बिना, सरल रूप में होना ही इस ग्रंथ

की विशेषता है । एक सरल और सहज मनुष्य ही इतना सरल रूप में कह सकता है ।

श्रीमुहम्मद अब्दुल कादर, अड़िशनल चीफ़ इंजनीयर, नेईवेली ।

ज्ञान (Enlightenment) इतना ही है ? इसी केलिए इतना वर्ष संघर्ष ! बाकी ज्ञानियों के कहने से इस ग्रंथ की श्रेष्ठ विशेषता क्या है ? मालुम होता है । इस ग्रंथ की विशेषता यही है कि ऐसे किसी ने न कहा है। इस ग्रंथ को पढ़ने से मन का आन्तरिक संघर्ष घटकर, भय निर्भय हो गया है । जो भी पढ़ते उसे साफ़, स्पष्ट और नये रूप में समझ सकते हैं । सब कुछ पा लिया है, पाने के लिए और कुछ नहीं है – यही भाव प्राप्त हुआ है ।

श्री.आर. सरवणकुमार, होमियोपति डाक्टर, मदुरै.

वेदाद्री महर्षि से दीक्षा पाते ही जो खुश हुआ, इस ग्रंथ को पढ़ने के दिन पुनः प्राप्त हुआ । इस ग्रंथ को संसार भर में फैलाना चाहता हूँ।

श्री वेद सुब्बैय्या, मनवळक्कलै प्रोफेसर, कोवै ।

मैंने जिन विचारों को लिखने के लिए सोचा ये सब इस किताब में हैं । इस किताब का नाम मैंने रखा है – Essence ofAll Yogas – इस ग्रंथ को जिसने समझ लिया उसको ज्ञानी कह सकते हैं।

श्री राधाकृष्णन, मनवळक्कलै प्रोफेसर, नागरकोविल

किताब बहुत अच्छा है । हर एक वाक्य तत्व है । हर एक शब्द को गौर से पढ़ना है।

श्री अरिवानन्दम, बच्चों के विशेष वैद्य, तारापुरम

मेरे पास लगभग 3000 आध्यात्मिक किताबें हैं । सबको पढ़ लिया है। पर उनमें पूरा का पूरा परिवर्तित किया ग्रंथ 'ज्ञान मुक्ति' है । इसमें जो स्पष्टता और सरलता है वह और किसी में नहीं है । 15 बार मैंने इसे पढ़ लिया है, और भी पढ़ने की इच्छा है ।

श्री शरणकुमार, जेन संग आन्तरिक पुस्तकालय, तिरूच्ची ।

' ज्ञान मुक्ति ' ग्रंथ पढ़ते ही मैं बिल्कुल बदल गया । अर्थात् छोटे बच्चे जैसे उछलते कूदते हैं उसी प्रकार मैं भी खुशी में कूदने लगा।

श्री पार्थसारथी,इन्जनीयर, विरूदुनगर (55 आयु)

'ज्ञान मुक्ति' ग्रंथ पढ़ते–पढ़ते ही मुझे व्याधिस्थ बनानेवाले विषय कम होते जा रहे हैं ।

श्री. कैलासम, होमियोपति कालेज छात्र,
पूर्व बैंक अधिकारी,सेलम (आयु 50)

इस ग्रंथ में बताये रास्ते पर चलने से ध्यान करने की आवश्यकता नहीं होती है ।

श्री षण्मुखम (प्राध्यापक) आर.वी.एस. इंजनीयरिंग कालेज, तिण्डुक्कल

(श्री भगवत जी से बातें करते समय ' ध्यान की आवश्यकता है या नहीं ? ऐसे पूछते समय उन्होंने बताया, 'ये सब टानिक के जैसे हैं व्याधि को दूर नहीं कर देता, ज्ञान की स्पष्टता व्याधि को दूर करनेवाला औषध है । ध्यान में खुशी और मन भरपूर होने पर जिनकी रूचि है वे अनुसरण कर सकते हैं ।)

धार्मिक तत्व 'जानने के लिए दुर्लभ है, विस्मय कर देनेवाले हैं, बडे परिश्रम के हैं – ऐसे ही कई लोग सोचते हैं, पर ये समझने में सरल हैं, संतोष देनेवाले हैं, थकावट न देने वाले हैं । ऐसे आश्चर्यजनक रीति में विस्तार रूप में बताकर 'ज्ञान मुक्ति' नामक नये ग्रंथ द्वारा ज्योति के मार्ग पर ज्योति दर्शाते हैं ।

वैज्ञानिक उन्नति की प्रचुरता के इस युग में आध्यात्मिक विज्ञान बहुत आसानी से समझनेवाली है – ऐसे ये जो सच बताते हैं वह हर्षजनक है । बहुत कम ही शब्दों में बहुत बड़े विषय को हमें स्पष्ट रूप में साफ़–साफ़ बताए हैं ।

श्री तेनमोळी कल्लै अरूटसेलवन, ओड्डनसत्तिरम्

सेलम डिस्ट्रिक्ट इळम्पिल्लै के मनवळक्कलै असिस्टेन्ट प्रोफसर ज्ञान प्रकासम जी ने 500 प्रतियाँ खरीदकर मुफ़्त में सबको दिए हैं । उनके नाम के अनुसार ही 'ज्ञान मुक्ति' ग्रंथ उनमें जो ज्ञान है उसे और भी प्रकाशित कर दिया है ।

अगर ज्ञान मुक्ति ग्रंथ एक आदमी पढ़कर उसके बारे में जान लेता है तो कम से कम 10 कापियाँ खरीदकर अन्य लोगों को दिए बिना नहीं रह सकता है । सुगन्धित फूल विकसित होता है तो क्या सुगन्ध नहीं फैलेगा ? ' मुझे जो ज्ञान प्राप्ति मिली वह इस दुनिया को भी मिलना है ' – यह तो असली बात है ।

मेरे सोच में यह ग्रंथ सारे संसार पर शासन करनेवाला है । मेरे ख्याल में जो बुद्धिशाली दोस्त हैं उनकी प्रशंसाएँ व इस ग्रंथ को फैलाने की उनकी उत्सुकता बहुत आनन्ददायक है । कई आध्यात्मिक ग्रंथों को पढ़े लिखे बहुत कम ही लोग बुढ़ापे में ज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं । पर युवावस्था में ही 'ज्ञान मुक्ति' ग्रंथ पढ़ना–पढ़ाना बहुत अच्छा होगा ।

श्री भगवत जी ने चालीस साल के परिश्रम से एक कुआँ खोद लिया है । हमें भी कुआँ खुदे बिना उसी कुँए से पानी लेकर उसका उपयोग करना चाहिए ।

कई लाभदायक खोजों के बराबरवाली खबर इस ग्रंथ में है । जो लोग यह ग्रंथ पढ़ते हैं उनकी जिम्मेदारी है कि इसे युवाओं तक पहुँचाना है ।

पढ़े लिखे सब इसे पढ़कर, सुधारकर अन्य लोगों को भी उन्नति पाने का रास्ता दिखाना है । ' सब उन्नति पाकर जियें ' ।

तिण्डुक्कल जयगोपाल

सेलम के होमियोपति डा.विजयलिंगम जी को इस ग्रंथ को पढ़ने देने पर देखते ही सोचा कि ये भी ओशो के जैसे लिखे गये होंगे । बताया है कि आजकल के ध्यान संस्थाएँ चलानेवाले जो कहते हैं, उसे ही ये भी बताए गए होंगे । पर पूरा पढ़ने के बाद मैं इसी लिए बहुत खुश हुआ कि जिस सत्य को अन्य आध्यात्मिक संस्थाएँ लोगों को समझाने का अथक परिश्रम कर रहे हैं उसे ये बहुत सरल रूपसे समझाते हैं । कई ध्यान संस्थाएँ करनेवाले कार्य यह ग्रंथ ही करेगा ।

श्री जे. कार्तिकेयन, विन विन इन्टरनेशनल, चेन्नै

पैसे कमाने या यश पाने यह ग्रंथ न लिखा गया है । हमारे बन्धु–बाँधव तथा समाज पर ख्याल रखकर, समाज अच्छी तरह रहने केलिए सामाजिक कर्तव्य के नाते लिखा गया है ।

इस ग्रंथ से समाज में होनेवाली बड़ी उन्नति को ख्याल में रखकर–लेखक की अनुमति के साथ – यह ग्रंथ–जो कोई भी छपाकर मुफ़्त में वितरण कर सकते हैं या मुफ़्त में जो वितरण करना चाहते हैं वे पब्लिशर से संपर्क रखकर 'भेंट की प्रति' – मुद्रा के साथ कापियों को कम दाम में पाकर वितरण कर सकते हैं ।

पब्लिशर

इस ग्रंथ के लिखने में तत्पर और इच्छुक अपने परिश्रम दिए पण्डित श्री.सु.एडकम जी, पण्डित श्री.का.ना, करूणानिधि जी, और तिण्डुक्कल जयगोपाल जी आदि को मेरा धन्यवाद ।

लेखक.

विषयसूची

1. एक क्षण में ज्ञानप्राप्ति साध्य है – 1
2. हमारा मन – 18
3. आन्तरिक आन्दोलन – 31
4. मुक्ति प्रदान करनेवाली समझना – 40
5. भावों का विकास – 57
6. मुक्ति – 66

(1)

1. एक क्षण में ज्ञानप्राप्ति साध्य है ।

ज्ञान प्राप्ति – ही मानव जीवन का ऊँचा लक्ष्य है ।

ये सब आध्यात्मिक साधकों का राय है ।

मान लेंगे कि एक व्यक्ति मन लगाकर रूचि से आध्यात्मिक साधना करके ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करता है ।

कितने काल उनको परिश्रम करना है ?

10 साल ? 12 साल ? 20 साल ?

या क्या उनके जीवन भर ?

राजा जनक के बारे में आपने सुना होगा –

राजा जनक वेदपाठों को एक आचार्य से अभ्यास कर रहे थे । एक वेद ग्रंथ में एक अनोखा वाक्य दीख पड़ता और राजा जनक को आकर्षित करता था । ऐसे बताया गया है –

एक घुड़सवारी घोड़े की एक पादपीठ पर पैर रखकर दूसरे पैर दूसरी ओर ले जाने के पहले, वह प्रज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

(2)

सेडिल की एक ओर पैर रखते ही घोड़ा चलना आरम्भ करेगा । इसलिए बड़ी जल्दी से ही एक, दूसरी ओर के सेडिल में पैर रखेगा ।

इससे यह खबर दी जाती है कुछ ही क्षणों में एक, प्रज्ञान की प्रप्ति कर सकता है ।

राजा बहुत आश्चर्य हो गए ।

उन्होने घर और राज्य त्याग कर तपस्वी गण कई काल तक घोर तपस्या करते हुए देखा था ।

इसलिए ऐसी तपस्या की आवश्यकता नहीं है ?

कई साल तपस्या करके पाया प्रज्ञान कुछ ही क्षणों में प्राप्त करना कैसे साध्य है ?

उसे विस्तार रूप में कहने के लिए राजा ने आचार्य से प्रार्थना की। पर आचार्य ने ज्ञान प्राप्ति न की थी । इसलिए वे विस्तार रूपसे न बता सकते थे ।

राजा ने उसे ऐसे ही न छोडा । पण्डित, योगी ऐसे कई सज्जनों से पूछा । कोई उसके शंका का समाधान न कर पाते । शास्त्र के कथन का निरूपण नहीं कर पाते हैं । अन्त में अष्टवक्र नामक एक ज्ञानी ने खुद आकर राजा के शंकाओ का समाधान देकर स्पष्ट कर दिया है ।

राजा भी क्षण में प्रज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी बन गया । 'शास्त्र का कथन' सत्य ही है–मान लिया ।

(3)

क्या यह वेदकाल की कहानी या आचरण का सत्य है ?

अगर यह सत्य हो तो कई काल से प्रयत्न करने पर भी हमने प्रज्ञान क्यों प्राप्त नहीं किया ?

हम सच्ची उत्साह के साथ ही आध्यात्मिक साधनाओं का आचरण कर रहे हैं । आध्यात्मिक साधनाओं में जो आगे हैं उनके मार्गदर्शन का ही हम सही आचरण कर रहे हैं ।

फिर भी प्रज्ञान प्राप्त करना क्यों दूर होता ही आ रहा है ? क्या वह न मिलनेवाला फल हो गया है ?

उन दिनों में जो विषय साध्य है वह अब क्यों साध्य नहीं है ?

बीसवीं सदी के महान जे.के. नामक जे.कृष्णमूर्ति ने जो बताया उसे सुना ही होगा ? वे कहते हैं :

''एक आदमी द्राक्षा फल उत्पत्ति करने के लिए द्राक्षा बीज बोते हैं । पानी सींचकर, खाद डालकर, द्राक्षा लता पालते हैं । ठीक काल पर वह फूलता है । फिर पकता है । उसको द्राक्षा फल मिलता है । इसके लिए थोड़े समय की आवश्यकता है, देख–रेख चाहिए, सहनशील परिश्रम चाहिए । पर मैं आपको और एक बात बताता हूँ । आप द्राक्षा बीज के साथ आइए । एक घण्टा मन लगाकर मेरा भाषण सुनिए । आप घर लौटते

समय द्राक्षा फल के साथ जाएँगे । ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय की आवश्यकता नहीं है । मन खोलकर मेरे वचन ध्यान से सुनना काफ़ी है । आपकी तरफ़ से आपको किसी प्रकार के प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है । प्रज्ञान आपका बन जाएगा। प्रज्ञान से आप घर लौट सकते हैं ।

वे झूठ नहीं कहते हैं । उन दिनों की किताबों में बताये गए विषय के जैसे ही बताये हैं । घोडे की एक सेडिल में एक पैर रखकर और एक पैर रखते समय में ही प्रज्ञान प्राप्त होता है । वेद में कहने के जैसे ही जे.के. भी कहते हैं ।

वे ऐसे निर्णय करके कहते हैं कि उनको मालुम है वेद में जो कहे गये हैं वे सत्य हैं वे अनुकरण करने साध्य हैं । इसलिए वे निर्णय करके कहते हैं । उनका कथन सत्य कथन है ऐसे लेने पर भी जे.के. का विवरण कितने लोगों को ज्ञान प्राप्त करा दिया है ।

जे. के. अपने आरम्भ काल के भाषण में पहले कहे गए द्राक्षा–फल का उदाहरण देकर भाषणों में अपनी वेदना भी प्रकट कर दिये हैं ।

'' मैं भी आप से 60 सालों से बोलता आ रहा हूँ । आप भी वर्षों से मेरा भाषण सुनते आ रहे हैं । पर आप में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है । इसका कारण कौन है ? कौन इसका जिम्मेदारी है ? ''ऐसे वे पूछते हैं ।

उनका सवाल न्याय ही है ।

(5)

दस और दो मिलाकर बारह – ऐसे कहने केलिए एक क्षण काफ़ी है । पर दोनों को मिलाना छोड़कर और कुछ काम करते रहें तो हजारों साल होने पर भी बारह–ऐसा जवाब नहीं मिलेगा ।

ज्ञान बहुत सरल है ।

अगर हम हलचल में रहें तो वह, ज्ञान रहस्य बन जाएगा । सचमुच में ज्ञान प्राप्त करना क्षण में होनेवाला है । पर – एक ऐसे बताते है कि '' ऐसे एक क्षण में होनेवाला है'' – तो हम क्या सोचेंगे ?

क्षण में ज्ञान प्राप्त करना साध्य नहीं है। ऐसे एक क्षण में प्राप्त करते हैं तो उनके कई साल प्रयत्न करने के कारण अब क्षण में ज्ञान प्राप्त करना साध्य हुआ होगा – ऐसे हम सोचेंगे । ऐसे ही –

एक महीने में ज्ञान प्राप्त करना साध्य है – ऐसे एक बताते हैं तो हम सोचेंगे कि एक महीने में अनोखे अभ्यास करने के कारण प्रायः ज्ञान प्राप्त किया होगा । सोचे होंगे कि ऐसे एक ही महीना कहने के कारण ही प्रायः वह साध्य हुआ होगा । सचमुच में ज्ञान प्राप्त करना एक ही क्षण में होनेवाली घटना है ।

एक क्षण में घटनेवाला है तो क्या एक मनुष्य अपनी शक्ति से और एक मनुष्य को ज्ञान विकास, क्षण में प्रदान करसकता है ?

(6)

सचमुच किसी को अपनी शक्ति दूसरे को देने की आवश्यकता नहीं है। अनोखे अभ्यास करने की आवश्यकता भी नहीं है ।

ज्ञान प्राप्त करना एक स्पष्ट स्थिति है, ज्ञान क्या है, अज्ञान क्या है–इसकी स्पष्ट स्थिति ! ज्ञान क्या है, अज्ञान क्या है – समझते ही ज्ञान – विकास हो जाएगा ।

वह कैसे साध्य है ?

ज्ञान क्या है – ऐसे समझते ही एक मनुष्य कैसे ज्ञान प्राप्त कर सकता है ? समझ लेने के बाद उसे अनुकरण करके ही उसका क्या दिनचर्या के काम में नहीं लाना है ?

पर यहाँ का चालचलन ऐसा नहीं है । हमें उसे कार्यान्वित करने की आवश्यकता नहीं हैं । आचरण में लाने की आवश्यकता नहीं है । ज्ञान प्राप्त करना तभी हो जाता है कि जब हम ज्ञान के बारे में समझ लेते हैं ।

इसलिए इतने काल तक ज्ञान के बारे में जान लिए बिना ही रहे हैं। हम कई तरीकों से पढ़कर समझ लिए हैं कि ज्ञान माने क्या है ? ज्ञान के बारे में कई लोगों के कहने से ज्ञान माने क्या है – हमने पहले ही समझ लिया है । फिर भी हमने अभी तक ज्ञान प्राप्त नहीं किया है ?

जब हम ज्ञान के बारे में समझ लेते हैं तभी हम जानते हैं कि हमने ज्ञान के संबन्ध में जो समझ लिया है वह गलत है ।

(7)

'' हम ऐसे सोच लिए हैं कि यह हम ही यह शरीर और मन हैं । सचमुच में हम शरीर या मन नहीं हैं । हम इनका आधारभूत आत्मा ही हैं । हमारा मन बाह्य रूपमें कार्यात्वित होने से हमें आधारभूत आत्मा का ज्ञान नहीं हैं । इसलिए हमारे 'ध्यान का बाह्य रूप में कार्यान्वित होना बदलकर हमारे ध्यान को आन्तरिक मोड़ देकर इसे जान लेना है कि अन्तरिक मन में तल्लीन होकर हम, अपने आत्मा ही हैं । ज्ञान यही है कि हम कौन हैं – इसे हमने पढ़ लिया है ।

'' हम सोते समय ऐसे एक स्वप्न देखते हैं कि हम अपने दोस्तों के साथ एक आपत्ती में फंस लिए हैं । उस समय किसी ने दरवाजा खटखटाया । जागते हैं । जागृत अवस्था में जान लेते हैं हम आपत्ती में नहीं हैं । इसे भी समझ लेते हैं कि हमारे साथियों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । इसे समझ लेना ही ज्ञान है कि हम किसी आपत्ती के बिना सुरक्षित होकर बिस्तर में लेट लिए है '' । – इसे भी हमने पढ़ लिया है ।

आत्मा के ज्ञान के बारे में इस प्रकार विस्तार रूप में बताये गए हैं । इससे हमें आत्मा के गुण का विवरण मिलता है।

पर इसे पढ़ने से हमें इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है कि ज्ञान माने क्या है ?

हम यहाँ इसके बारे में खोज़ नहीं करते हैं । यही हमारी खोज़ की यात्रा का सहायक होगा कि आत्मा के बारे में ऐसे रायों को हमें ज़रा दूर रखना है ।

पर यही सत्य है :

(8)

ज्ञान माने क्या है इसे समझते ही हमारी ज्ञान प्राप्ति भी होती है । वह भी एक ही क्षण में घटता है ।

ऐसा ज्ञान बुद्ध को प्राप्त हो गया । क्षण में हो गया । बोधी वृक्ष के तले में हो गया है । वह असाधारण ज्ञान के रूप में सबसे आज तक सराहा आ रहा है ।

वह सचमुच असाधारण ज्ञान ही है । क्योंकि वह किसी की सहायता के बिना खुद समझ लिया गया है । ऐसे व्यक्ति की सभी शंकाएँ दूर होती हैं । वे खुद ज्योति बनते हैं ।

असाधारण रूपी यह ज्ञान –

बहुत सर्व साधारण है । क्षण भर में आप भी इसे प्राप्त कर सकते हैं ।

इसी कारण से ही हमारी ज्ञान प्राप्ति दुर्लभ बन रही है कि हमारा ज्ञान के बारे में गलत राय है ।

ज्ञान के बारे में हमारे गलत रायों को दूर करके ज्ञान क्या है – इसे प्रत्यक्ष समझते ही हममें ज्ञान रूपी वसन्ती हवा बहने लगती है ।

ऐसे मत सोचिए कि बुद्ध के समान ज्ञान इस जन्म में हमें प्राप्त होना साध्य है क्या ?

वह सर्व साधारण है ।

निश्चय ही हम सबसे कर सकनेवाला, समझनेवाला और प्राप्त होने ही वाला है ।

(9)

ज्ञान माने क्या है – ऐसे समझने के क्षण में ज्ञान प्राप्ति हो सकती है । इसमें जरा भी संदेह नहीं है ।

ज्ञान माने क्या है ? – हमारे शास्त्रों ने अब तक ठीक परिमाण में नहीं बताया है ?

क्या हमें ही नए रूप में खोज़ करना चाहिए ?

शास्त्रों ने एक ही जैसे इसे पहले ही बताया है । बताये बिना नहीं रहे । फिर भी ठीक तरह से वह हमें नहीं प्राप्त है । कई तरह की खबरों के बीच, विस्तार कथनों के बीच, 'ज्ञान माने क्या है ' ? – इसका स्पष्ट अर्थ हमें प्राप्त नहीं हुआ है ।

बुद्ध ने साधारण रूप में इस ज्ञान प्राप्ति का अर्जन नहीं किया है । कठोर व्रत, कठोर तपस्या करने के बाद ही वे इस परिपूर्णत्व को प्राप्त कर लिये हैं ।

हमने उतने व्रत और तपस्याओं को नहीं किया है । एक आम व्यक्ति के सारे तुच्छ गुण हममें हैं । इस स्थिति में 'बुद्ध का`जो साध्य है, क्या वह हमारे लिए साध्य होगा ? हमारा आम मानवीय गुण ही क्या इस ज्ञान प्राप्ति के लिए रूकावट होगा ? ऐसे –

ज्ञान माने क्या है हम ठीक तरह से न समझने की स्थिति में ऐसे संदेह होना न्याय ही है।

पर हमारा स्वभाव एक रूकावट नहीं है। कठोर तपस्या और व्रतों के बाद ही इसे हम प्राप्त कर लेंगे – ऐसे कोई शरत इसे नहीं है ।

(10)

हम सबको यह साध्य है । ज्ञान हमें तभी अपना हो जाएगा जब हम ज्ञान माने क्या है ? – समझ लेते हैं । प्रयत्न के फल से होनेवाला नहीं है – ज्ञान ।

अपने मित्र को अपना पता बताकर, अपने घर का स्थान उसकी चारों ओर का रास्ता, घर की बनावट आदि बताते हैं । हम जानते हैं कि ये सब उन्होंने घर की खबर के जैसे बताया । ये हमारे मन में उनके घर का एक कल्पना ही है । हम अपने आप जाकर देखने तक निरीह मन में बुद्धि में जान लिये हैं । खुद जाकर देखने पर यथार्थ रूप जान लेते हैं ।

क्या ज्ञान को समझ लेना भी ऐसा है ?

ज्ञान माने क्या है पहले मन में बुद्धिपूर्वक समझकर, फिर प्रत्यक्ष यथार्थ में अनुभव के आधार पर समझना है ?

नहीं । यहाँ ऐसे विषय नहीं है ।

सिर्फ ख्याल में समझना काफ़ी है । सिर्फ़ बुद्धिपूर्वक समझना काफ़ी है । ज्ञान क्या है ? क्या ज्ञान नहीं है – इसे सिर्फ मन में बुद्धिपूर्वक समझना काफ़ी है । उस स्थिति में –

आपके गलत तरीके शक्तिहीन बन जाते हैं । आपके सब बन्धन टूट जाएँगे ।

मुक्ति आप के बुलाए बिना आ जाती है । इस मुक्ति को हम किसी और एक जगह पर ढूँढते हैं – ऐसे आश्चर्य में डूबेंगे । उसी समय आपकी मुक्ति आपके जीवन को प्रकाशित करा देगी ।

(11)

इस ज्ञान को समझने के लिए क्या हमें किसी योग्यता की जरूरत नहीं है ?

नहीं है क्या ? किसी एक को पाने के लिए कुछ उचित योग्यताओं की आवश्यकता नहीं है न ? ऐसी स्थिति पर अतीत के इस ज्ञान को समझने केलिए कुछ आधारभूत योग्यताएँ चाहिए ।

पर वे कठिन हैं ? नहीं, वे कठिन नहीं है । वे बहुत सरल है, न्याय हैं । वेः

1. आध्यात्मिक जीवन में रूचि और श्रद्धा चाहिए । उसके लिए कठोर तपस्या करना है – ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है ।
2. आध्यात्मिक ग्रंथों में थोड़ा–सा आधारपूर्ण परिचय होना है । (उसके लिए आध्यात्मिक ग्रंथों को संदेह के बिना पढ़कर दक्ष बनने की आवश्यकता नहीं है)
3. न्यायमय रायों को स्वीकार करने का खुला दिल चाहिए । (हमें ऐसी जिद् नहीं चाहिए कि पहले ही जो राय हैं, जो नतीजा है उनको बदलने के लिए प्रेरित करनेवाले किसी भी नए राय को खोज़ने नहीं ले लूँगा ।
4. हमें अपनी योग्यता और स्वभाव से ज्ञान इस जन्म में प्राप्त नहीं होगा – ऐसी तुच्छ मनोभावना और अविश्वास नहीं होना चाहिए ।

(12)

ऐसे साधारण न्यायपूर्ण योग्यताओं से हम सब ज्ञान प्राप्ति आसानी से प्राप्त कर सकते हैं । वह भी क्षणभर में ।

क्योंकि यहाँ हम प्रयत्न करके कुछ भी नहीं साध्य बन सकते हैं । अभ्यास और प्रयत्न के लिए ही काल की आवश्यकता है । आध्यात्मिक अभ्यास सब हमें अनुभव ही दे सकते हैं। ज्ञान नहीं देंगे ।

यहाँ हमें करने के लिए कुछ भी नहीं है। इसे सिर्फ़ मन में समझना काफ़ी है कि ज्ञान माने क्या है ? हमारी राय की स्पष्टता हमें ज्ञान प्रदान कर सकते हैं । वह भी निरन्तर रूप में । क्या आध्यात्मिकता जिनको नहीं है उनको यह ज्ञान प्राप्त होगा ? होगा । पर उनको इसकी गहराई समझ में नहीं आएगा । मन की चिन्ताओं से सिर्फ़ वे छूट पा सकते हैं ।

क्योंकि मन ही मन को सामना करेगा । अनचाहा संग्राम रूकेगा । जिनको आध्यात्मिकता है उनको स्थिर ज्ञान मुक्ति मिलेगी ।

वह ज्ञान–मुक्ति माने क्या है ?

उसे हम कैसे समझ सकते हैं ?

(13)

2. हमारा मन

ज्ञान माने क्या है – इसे सुस्पष्ट समझने के पहले हमें अपने मन की बनावट समझना सहायक होगा ।

हमारे मन को अपने सुविधा के अनुसार बाँट लेंगे :–

1. भावना मन (Conscious mind)
2. अन्दर मन (Subconscious mind)
3. आन्तरिक मन (Deeper conscious mind)

भावना मन को भावना भी कह सकते हैं । हमारे दिनचर्या में हम किसको जानते हैं – समझते हैं – उनको भावना या भावना मन कहते हैं । सबेरे बिस्तर से उठने से लेकर रात बिस्तर तक जाने तक तरह – तरह के अनुभव

हमें होते हैं । उस समय हम सुस्त रहते हैं । खुशीपूर्ण अनुभव होते हैं । शोकजनक अनुभव होते हैं । हमारे दिनचर्या में हमें क्रोध होता है; भय लगता है; प्रेम होता है; घृणा होती है; उत्साह होता है । ऐसे कई तरह की भावनाएँ हमारे हर एक दिन के जीवन में होती हैं । भावना के बिना हम एक क्षण भी नहीं रहते हैं । सोते समय स्वप्न में भी ऐसी भावनाएँ जारी रखती हैं ।

–इन सब को एक साथ हमारी भावना या भावना मन (Conscious mind) ऐसे कहते हैं ।

(14)

हमारी भावना क्रियान्वित होना हमें बाह्य रूप में मालूम है । क्योंकि समझे बिना हमारी भावना नहीं कार्य करती है। समझकर क्रियान्वित होनेवाला मन ही हमारा भावनामन है ।

ऐसे बाह्य रूप में कार्य करनेवाले हमारे मन के नीचे तले में, बाहर से न दीख पढ़नेवाला एक भाग भी क्रियान्वित है।

वह है अन्दर मन ।

अन्दर मन ही हमारा स्वभाव है ।

हर एक को एक एक स्वभाव होगा । वह हर एक का भिन्न–भिन्न होगा । कुछ लोग स्वभाव से ही बहुत सहिष्णुता और प्रेम पूर्ण होंगे और कुछ लोग स्वभाव से ही असह्य और कठोर होंगे ।

ये सब स्वभाव हैं ।

हमारे स्वभाव जहाँ स्थित हैं वहीं हमारा अन्दर–मन है । (Sub Conscious mind)

बाह्य रूप से अनुभव करनेवाले सब भावनाओं का आधार हमारा अन्दरमन ही है ।

इस अन्दरमन को हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं । जब वह भावना के रूप में परिवर्तित होता है तभी हम जान सकते हैं ।

हमारे स्वभाव के अनुसार ही भावनाएँ भी हमसे बाहर निकलते हैं । फिर भी –

हमारे स्वभाव को हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं । हमारे स्वभाव किस प्रकार के हैं – इसे हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं ।

हमसे जो भावनाएँ निकलती हैं उसके आधार पर ही हमारे स्वभाव किस प्रकार के हैं – इसका अनुमान कर सकते हैं ।

(15)

क्या मुझमें क्रोधित होनेवाले स्वभाव हैं ? इसे मैं खुद नहीं जान सकता हूँ । पर मेरा क्रोध जब बाहर निकलता है, तभी मालूम होता है कि मुझमें क्रोधित होने का स्वभाव है ।

भावनामन क्रियान्वित मन है । अन्दरमन क्रियान्वित मन नहीं है । अर्थात् उसका चालचलन हमें मालूम नहीं है ।

पर क्रियान्वित मन का आधारशिला यह न क्रियान्वित होने वाला अन्दर मन ही है ।

हमारे अन्दरमन से उत्पन्न होनेवाला ही है हमारा भावनामन । हम समझ सकते हैं कि हमारी भावना या भावनामन ऐसे हमारे अन्र्दरमन से उत्पन्न होता है । पर

हमारा अन्दरमन कैसे उत्पन्न होता है – यह हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं ।

हम इसे अनुमान से ही जान सकते हैं कि वह कैसे उत्पन्न हुआ होगा ।

हमने अपने माँ–बाप के स्वाभाविक स्थिति को एक हद तक वारिस में प्राप्त किये हैं । ये हमें तरह–तरह के अनुभव दिये हैं कि जैसे हम बड़े हुए, पालन किए गए, हमसे अनुभव की गई घटनाएँ और हमसे किए गए कार्य । हमारे सब अनुभव हमारे अन्दरमन में अंकित हो जाते हैं । हमारे मन में अंकित किए गए समस्त रूप ही हमारा स्वभाव बन जाते हैं । यही हमारा स्वभाव है, हमारा अन्दरमन है ।

यह कभी भी पहले जैसे नहीं हो सकता है । क्योंकि यह इकट्टा होता जाता है ।

हमारा हर एक अनुभव अंकित होता आ रहा है ।

(16)

हमारे स्वभाव से भावना प्रकट होती है । हमारी भावनाएँ मन में अंकित होकर स्वभाव में परिवर्तित होती है ।

ऐसे एक दूसरे के आधारभूत होने पर भी हम अपनी भावनाओं को ही बाह्य रूप में जान सकते हैं ।

आधारभूत अन्दरमन को हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं । हम दफ़्तर जा रहे हैं । रास्ते में अपने दोस्त से मिलते हैं । उससे हम खुश हो जाते हैं । खुशी प्रदान करनेवाला स्वभाव हमारे अन्दरमन में हैं । वह खुशी में प्रकट होता है ।

उसी प्रकार रास्ते में चलते समय हम ऐसे आदमी से मिलते हैं, जिसे हम पसन्द नहीं करते हैं । हमें घृणापूर्ण द्वेष होता है । घृणा पैदा करनेवाला स्वभाव हमारे अन्दरमन में है । उसके प्रदर्शन होने से हमारी घृणा पैदा होती है ।

यहाँ खुशी का भाव और घृणा का भाव

–हमारा अन्दरमन है । ये दोनों हमारे अन्दरमन के प्रदर्शन है । ऐसे हम भाग लेनेवाले हर एक अवसर पर उस परिस्थिति के अनुसार हमारा अन्दरमन काम करता है । फिर भी हमारे अन्दरमन के स्वभाव के अनुसार भावनाएँ प्रकट होती हैं ।

ऐसे मान लीजिए कि हमारी नापसन्द घटना घटती है । याने जब हम रास्ते में चलते हैं तब एक आदमी आने जानेवाले लोगों को कोसता रहता है ।

(17)

अगर हम भय स्वभाववाले होने पर हमारा स्वभाव भय को प्रकट करता है । हम भय से वहाँ से चले जाते हैं ।

अगर हम भय स्वभाववाले न होने पर हमारा स्वभाव कोसनेवाले पर क्रोध पैदा कर देता है ।

हमारे स्वभाव के अनुसार हमारी भावनाएँ प्रकट होती हैं । ऐसे हमारी भावनाओं का कारणभूत होनेवाला ही हमारा अन्दरमन है । (Subconscious Mind)

आगे हम देखते हैं आन्तरिक मन ।

आन्तरिक मन माने क्या है ?

प्राकृतिक रहस्यों का भण्डार है आन्तरिक मन ।

हमारे मन के गहरे स्थान पर यह स्थित है ।

अन्दरमन को जैसे हम प्रत्यक्ष नहीं जान सकते हैं, उसी प्रकार यह आन्तरिक मन भी प्रत्यक्ष न जाननेवाला है ।

अन्दरमन के जैसे –

यह आन्तरिक मन भी जब भावनाओं को प्रकट करके भावना मन के रूप में कार्यान्वित होता है, उसके द्वारा इस आन्तरिक मन को जान सकते हैं ।

यह हमने देखा हे कि एक निर्धारित परिस्थिति में किसी एक घटना में हम भाग लेते समय, हमारे अन्दरमन के स्वभावानुसार भावनाएँ हमें होती हैं ।

हमारे अन्दरमन के जैसे यह आन्तरिक मन साधारण अवस्था में क्रियान्वित न होता है । इसके बदले हमारी भावनाओं तथा अन्दरमन से न हल होनेवाली समस्याओं को यह आन्तरिक मन अपने असाध्य शक्ति प्रकट करके हल करता है ।

(18)

उदाहरण स्वरूप आपत काल में हमारा अन्दरमन हमें भय और गड़बड़ प्रकट करता है । हम आपत से बचने दौडते हैं । पर 10 फीट् एक ऊँची दीवार हमारे रास्ते में रूकावट बन पड़ी है । हमें अब तक अपने जीवन में 5 फीट् दीवार पर भी न चढ़ने की आदत है ।

पर आपत काल में हमारे आन्तरिक मन की अपार शक्ति के कारण 10 फीट् ऊँची दीवार को भी लाँघकर–कूदकर बचने की शक्ति हमें होती है ।

पर ऐसे अपार शक्ति को प्रकट करनेवाले संदर्भ हमेशा नहीं होता है ।

कई वैज्ञानिकों ने बताया है कि जब कभी अपनी खोज़ों में रूकावटें आकर हल न पा सकते हैं तब अपने स्वप्नों में कुछ हल निकाल लिये हैं । ये सब इस आन्तरिक मन की क्रियाएँ ही हैं ।

यह आन्तरिक मन – एक रहस्य आकार के रूप में हमारे मन में स्थित होने पर भी, उसे क्रियान्वित करने आध्यात्मिक, योग, ध्यान के कई अभ्यास हैं ।

उन अभ्यासों से इस आन्तरिक मन को क्रियान्वित करके कुछ अजीब–बड़ी शक्तियाँ पा लिए हैं ।

एक इससे अष्ट महासिद्धि और अपार अनुभवों को प्राप्त कर सकता है । यह किसी प्रकार की भी हो सब –

भावनामन की सीमा के अन्तर ही क्रियान्वित होना है ।

भावना (consciousness) माने क्या है – इसे हम पहले ही भावनामन conscious नाम से देख लिये हैं । फिर भी उसे और भी जरा रिसर्च करने के लिए ले लेंगे ।

(19)

भावना माने क्या है ?

भावना एक और भावनामन एक नहीं है । एक ही गुण को दो अलग–अलग नाम से पुकारते हैं ।

जिनको हम बाहरिक रूप में जानकर अनुभव करते हैं । वही भावना या भावनामन है ।

हम एक सुख का अनुभव करते हैं । उसी प्रकार दुख भी अनुभव करते हैं । इनको हम अनुभव करके जान लेते हैं ।

ऐसे भाव से जान लेने को हम भावना कहते हैं ।

भावना को शरीर भाव, मन भाव ऐसे दो प्रकार में बाँट सकते हैं ।

शरीर से अनुभव करना एक; मन से अनुभव करना और एक है ।

ऐसे होने पर ?

हम अपने हाथ से आग छूते हैं । जला देता है । पीड़ा का अनुभव करते हैं । शरीर के अंग से अनुभव करने की पीड़ा है यह । इस भाव को शरीर भावना कह सकते हैं ।

हमारे व्यापार में नष्ट होता है । यह नष्ट हमें दुःख देता है । इसे हम अपने मन से अनुभव करके जानते हैं । मन से अनुभव करके जाननेवाला यह भावना मनभाव होता है ।

(20)

हमारे शरीर संबन्धित सारे अनुभव, शरीर भावना में प्रकट होते है । हमारे मनोभाव संबन्धित सारे अनुभव, मनोभावना में प्रकट होते हैं ।

इस स्थिति में हम अपनी खोज़ के दूसरे पहलू में बदल लेंगे ।

हमने जिस सवाल को पहले ही पूछा उसे ही यहाँ भी पूछना चाहिए ।

हमारे अन्दर मन का क्या हम अनुभव कर सकते हैं ?

हमारे भावना मन को हम अनुभव करते हैं। उसी तरह क्या हमारे अन्दर मन को अनुभव कर सकते हैं ?

हमने पहले ही देखा है कि हमारे अन्दरमन को प्रत्यक्ष अनुभव करना असाध्य है और हमारे आन्तरिक मन को प्रत्यक्ष अनुभव करना भी असाध्य है ।

यहाँ और एक विषय को हमें फिर से सोचना है कि हमसे अनुभव करने के लिए केवल भावनामन ही है ।

वह भावनामन हमारे अन्दरमन से बनाया गया होगा या आन्तरिक मन से बनाया गया होगा ।

यह आवश्यक नहीं है कि वह किससे बनाया गया है । केवल इस सत्य को हमें अपने मन में रखना काफ़ी है कि भावनामन के सिवा उसके आधारशिला को हम प्रत्यक्ष नहीं समझ पाते हैं ।

आगे हम भावना माने क्या है ऐसे पुरानी खोज़ को जारी रखेंगे ।

हमारी भावना को हम शरीर की भावना, मनोभावना ऐसे दो भागों में बाँट लिये हैं ।

शरीर की भावना माने शरीर के अंगो से अनुभव करके समझना है ।

मनोभावना माने मन से ही अनुभव करके समझना है – इसे समझ लिया है । (21)

उसमें मनोभावना माने क्या है – उसे और भी थोड़ा सा खोज़ लेंगे । दु:ख माने मन से अनुभव होने का एक मन का अनुभव है । उसी प्रकार खुशी भी मन से अनुभव करने का मन का एक अनुभव है । ऐसे ही इच्छा, द्वेष, भय, कोप, प्यार, प्रेम ऐसे भावनाओं को भी हम अपने मन के अनुभव के रूप में जान लेते हैं ।

इन भावनाओं का गुण ही क्या है ?

याने,

हम अपने शारीरिक भावनाओं को शरीर, मुहँ, आखँ, नाक, कान, नामक पाँच इन्द्रियों द्वारा समझ लिए हैं ।

क्या हमारे मनोभावनाओं को समझनेवाला विशेष गुणवाले इन्द्रिय होते हैं ?

कैसे हम उनको समझ लिए हैं ?

हमारे दु:ख को हम अपनी मनोवेदना कहते हैं । उस पीड़ा को हम अनुभव करने के कारण ही उसे वेदना कहते हैं ।

उस वेदना को हम अपने शरीर के किस भाग में अनुभव करते हैं ?

मन में अनुभव करते हैं तो वह मन हमारे शरीर में कहाँ स्थित हैं ?

(22)

हमारे सब दु:ख हमारे नस–मण्डल और हमारे शरीर के आन्तरिक भागों में एक प्रकार का रासायनिक परिवर्तन करा देते हैं ।

उस रासायनिक परिवर्तन से ही हम दु:ख से होनेवाली मनोवेदना का अनुभव करते हैं ।

ऐसे ही हमारे भय, क्रोध सब हमारे नस–मण्डल में रासायनिक परिवर्तन करा देते हैं ।

इस रासायनिक परिवर्तन के द्वारा ही हम अपने मनोभावनाओं को जानते हैं ।

ऐसे ही हमारे प्रेम, इच्छा, लगन, घृणा, काम, ईर्ष्या जैसे मनोभाव भी अपने मन पसन्द रीति में शरीर में रासायनिक परिवर्तन कर देते हैं । उनके द्वारा ही हम उन मनोभावनाओं को जानते हैं । हमारे मनोनुभव के अनुसार उनके द्वारा होनेवाले रासायनिक परिवर्तन में भी कुछ भिन्नताएँ हैं ।

आमतौर पर

हमारे मन के सब अनुभव शरीर के भावानुसार ही प्रकट होते हैं । मनोनुभव – मनभावनाएँ – ऐसे हम बाँटने पर भी, मूल में – हमारे सब मनोभावनाएँ – शरीर की भावनाएँ ही हैं ।

हमारे शरीर में रासायनिक परिवर्तन करके शरीरात्मक भावना में जो मनोभावनाएँ न प्रकट हुए हैं, ये मनोभावनाएँ ही नहीं है ।

किसी एक को हम अपने मनोभावना कहेंगे तो उसे अपने आप को हमारे शरीर के भाव के रूप में ही प्रकट करना है ।

(23)

इसलिए

हमारे शरीर के भाव और मनोभावना के बीच में मूल भिन्नता नहीं हैं । हमारी सारी भावनाएँ शारीरिक भावनाएँ ही हैं।

इसलिए हमारे भाव रूपी मन माने हमारे शरीर के भाव ही हैं । हमारे अन्दरमन और आन्तरिक मन को प्रत्यक्ष न समझ सकते हैं – यह हमने पहले ही देखा है ।

उनको हम ऐसी शारीरिक भावना के रूप में ही अनुभव कर समझ सकते हैं । इसलिए हमारी सब भावनाएँ शारीरिक भावनाएँ ही है । आध्यात्मिक जगत में कुछ अपूर्व भावनाएँ और अनुभव कहे जाते हैं ।

ये भी,

हमारे शारीरिक भावना के रूप में ही अनुभव करके समझी जाती हैं । किसी चीज़ को अनुभव करना चाहिए तो उसे हम अपने शारीरिक भावना से ही अनुभव कर सकते हैं ।

किसी चीज़ को पहचानकर समझना है तो वही मन का काम है । मन से समझते हैं । शरीर से अनुभव करते हैं ।

इस स्थिति में

इन भावनाओं और ज्ञान–स्थिति में क्या सम्बन्ध है ? ज्ञान स्थिति माने क्या एक शारीरिक भावना है ?

आध्यात्मिक जगत में कई प्रकार की योग साधनाएँ और ध्यान–रीतियाँ होती हैं ।

(24)

उनको हम क्रम से अभ्यास करते समय हमारे अन्दरमन से संबंधित कई अनोखे, निराले अनुभव होते हैं । ऐसे अनुभवों को आम मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता है । आध्यात्मिक अनुभवज्ञों से ही ऐसे निराले – आनन्दमय – भावनाएँ अनुभव करके समझी जा सकती हैं ।

आत्मसाधनाओं की योग्यता के अनुसार कई प्रकार के अनुभव हमें होते हैं । आध्यात्मिक जगत में ऐसे कई अनुभव हैं ।

पर ये सब शरीर की भावनाएँ हैं । आध्यात्मिक अनुभव – नामक मुद्रा देने पर भी ये भी शारीरिक अनुभव ही हैं ।

इसलिए ये सब भावनाएँ प्रकट होते ही हैं और होती ही गायब होती हैं कितने भी श्रेष्ठ अनुभव हो ने पर भी उनको कुछ ही घंटों में या थोडे ही दिनों में गायब होना ही है ।

किसी अनुभव को निरन्तर अनुभव नहीं कर सकते हैं । फिर भी –

वैसे श्रेष्ठ आध्यात्मिक अनुभव किसी को होते समय, – वह अपने मन की चिन्ताओं से छूट जाता है ।

आनन्दानुभव के बहाव में पड़े हुए वह अगण्य उत्साह और जीवन्त सुस्ती से दीख पड़ेगा ।

' यह आनन्द स्थिति –

निरन्तर हो सकती है तो,

वही ज्ञान –स्थिति है ।

वही श्रेष्ठ स्थिति है ।

वही प्रज्ञान – स्थिति है – ऐसे ही एक सोचने लगेगा । क्योंकि हम वैसे अनुभव में हैं तो –

हम प्रेममय बन जाएँगे ।

किसी से घृणा नहीं करेंगे ।

(25)

हमारी सारी भावनाएँ आनन्दानुभव ही होती हैं ।

अतृप्ति हमें नहीं होती है ।

– ऐसे अनुभव हमें बहुत असाधारण दीख पड़ने के कारण,

– हम ऐसे सोचेंगे कि क्या यही ज्ञान–स्थिति है ?

क्योंकि इन अनुभवों का स्तर उतने श्रेष्ठ हैं कि साधारण मनुष्यों से न प्राप्त होनेवाला है । आध्यात्मिक साधनाओं से ही प्राप्त होनेवाला है ।

इसलिए यही श्रेष्ठ स्थिति है – ऐसे कोई निर्णय करेगा तो वह भी एक पहलु में न्याय ही है ।

पर – यह ज्ञान स्थिति नहीं है ।

ज्ञान – स्थिति ऐसे एक अनुभव नहीं है ।

ज्ञान एक है ; अनुभव दूसरा है ।

सब अनुभव गायब होना ही है । पर ज्ञान ऐसा नहीं है ।

वह आता है तो आया ही है; कभी गायब नहीं होगा ।

(26)

हमारा शरीर, अनुभवों को अनुभव करनेवाला साधन बन गया है । हमारा शरीर एक अद्‌भुत साधन है । उसका (क्रियान्वित होना) चाल–चलन विज्ञान के आधार पर है ।

आध्यात्मिक अनुभव हो या साधारण लौकिक जीवन के अनुभव हो, हमारा शरीर शरीरात्मक विज्ञान के अनुसार ही कार्य करता है । वैज्ञानिक रीतियों के अनुसार ही काम करता है ।

हमारे सब आध्यात्मिक अनुभव–वे जितने श्रेष्ठ क्यों न हो फिर भी – हम पहले ही देख लिए हैं – ये शारीरिक भाव ही हैं ।

उन आध्यात्मिक अनुभवों का चाल–चलन कैसा है ? क्या इसे आपने देख लिया हैं ?

जब हम आध्यात्मिक साधनाएँ करने लगते हैं, आरम्भ में ही बहुत सुलभ ही कुछ अद्‌भुत आध्यात्मिक अनुभव मिलते हैं । पर उसी अनुभव को फिर से पाना उतना सुलभ नहीं होगा ।

आपके घर का पता जान लेने के बाद, कई लोगों से पूछकर आपके घर का पता जान लेता हूँ । एक बार आपके घर का पता लगाने के बाद फिर आपके घर आना बहुत सुलभ है । किसी से बिना पूछे आसानी से आ सकता हूँ । क्योंकि आपका घर और उसका मार्ग मुझे मालूम हो गया है ।

आध्यात्मिक अनुभवों की दृष्टि में उसका चाल चलन बहुत भिन्न है ।

जब हमें आरम्भ में ही अद्‌भुत अनुभव बहुत सुलभ होते हैं । तब हमें आध्यात्मिक अनुष्ठान के बारे में और उसके चाल चलन के बारे में भी स्पष्ट मालूम नहीं हैं । पर उनको पुनः पाने के लिए हमें ज्यादा परिश्रम करना चाहिए । ऐसे परिश्रम करने पर भी फिर हमें जो अनुभव प्राप्त होता है उसका स्तर आरम्भ में जो पाया उसके जैसे नहीं होगा ।

(27)

ऐसे क्यों ?

किसी कार्य को पूरा कर देना है तो पहले से भी दूसरी बार या क्रम–क्रम से सारे प्रयत्न बहुत अनायास ही होना है न ? यहाँ क्यों ऐसा नहीं है ?

प्राप्त किए अनुभव फिर से प्राप्त करने के लिए हम बहुत प्रयत्न करते समय –

हम ऐसे इच्छुक होते हैं कि वैसे अपूर्व अनुभव हमें निरन्तर स्थिर होकर रहें ।

हम ऐसी गलत कल्पना में हैं कि निरन्तर अनुभव प्राप्त करना साध्य है । ऐसे राय रखना भी इस इच्छा का एक कारण बन गया है कि ऐसे अतीत अनुभव निरन्तर प्राप्त करना ही ज्ञान–स्थिति है ।

हमारा शरीर एक साधन है । उसके अनुभवों की एक सीमा है । उसे लाँघकर उससे अनुभव भोगना, अनुभव सहन करना साध्य नहीं है । ज्यादा होने पर अमृत भी जहर बन जाएगा । – इसे क्या हमने नहीं सुना है ?

अनुभवों को घारण करने की शक्ति का एक हद है । बेहद होने पर विपरीत परिणाम होने से रोक नहीं पाते हैं । आध्यात्मिक अनुभवों को जबरदस्त बहुत ज्यादा हमारे शरीर पर लादने पर वे हमारे शरीर को नाश करते हैं ।

हमारा शरीर ऐसे बनाया गया है कि प्रत्येक क्षण में नयी–नयी भावनाओं को अनुभव करके समझ लिया जाए ।

(28)

जब हम कटु रूचिवाला एक पदार्थ खा लेते हैं तो उसकी रूचि हमारे जीभ में वैसे ही न रहने देना चाहिए । उसी प्रकार मीठे पदार्थ खाने पर भी उस रूचि को भी वैसे ही न रहने देना । उसे परिवर्तित होते ही रहना है । वही तंदुरूस्तीपूर्ण इन्द्रिय भोग है । हमारी इन्द्रियों के तंदुरूस्त रहने का चिन्ह है ।

हमारे शरीर के सारे अनुभव ऐसे ही होना तंदुरूस्ती है । वह शरीर तब अपनी तंदुरूस्ती खो देता है कि जब हम अपने शरीर को अच्छे अनुभव के नाम पर किसी एक अनुभव से स्थगित करने जबरदस्त कर देते हैं ।

इसी कारण से हमारा शरीर ज्यादा आनन्दमय भावनाओं को स्वीकार नहीं करता है । सामना करने की स्थिति में एक ही अनुभव को फिर से भोगना देरी और रूकावटें हमारा शरीर ही प्रकट करता है ।

हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए कुछ विशेष अभ्यास हैं – यह दूसरी बात है । फिर भी हमारे शरीर के प्राकृतिक बनावट एक सीमा के अन्दर है ।

उस सीमा के अन्तर्गत स्थिति में सभी आध्यात्मिक अनुभव हमारे मन और शरीर को अच्छे फल देंगे ।

इन अनुभवों को निरंतर प्रतीक्षा करना नाश की इच्छा करना ही है ।

आध्यात्मिक साधकों में कई 'निरन्तर अतीत आनन्दानुभव ज्ञान स्थिति' ऐसे गलत विचार में उस के लिए प्रयास करते हैं ।

उसी कारण से ज्ञान प्राप्ति में उनको देर लगती है ।

(29)

सभी अनुभव शारीरिक संबन्ध हैं ।

अनुभव और शारीरिक भावना भिन्न–भिन्न नहीं है ।

शारीरिक अनुभव ज़रा भी निरन्तर होने की संभावना नहीं है।

ज्ञान स्थिति माने एक अनुभव के आधार पर नहीं है ।

ज्ञान स्थिति को एक अनुभव के रूप में प्रतीक्षा नहीं करना है ।

इन सबको स्पष्ट समझ लेना ही –

ज्ञान का अर्थ समझना ही पहली सीढ़ी है ।

ळळळळळळ

(30)

3. आन्तरिक संग्राम

हमारे मन के ज्यादा चालचलन इच्छा–घृणाओं से संचालित किया जाता है ।

सुख पर इच्छा, दु:ख पर द्वेष से हमारा मन अपने दिनचर्या में चलता है ।

– इसके चालचलन को हमें समझना है ।

ऐसे मान लीजिए कि मेरे व्यापार में बहुत नष्ट हो गया है । इससे मुझे ज्यादा मनोदु:ख और मनोवेदना होती है ।

ऐसे ही कुछ लोग मुझे बहुत निम्नस्तर में उँगली उठाते हैं । उससे वह भी मेरे मन को सताता है; मनोवेदना देता है ।

मुझे या मेरे बन्धु को बड़ा शारीरिक रोग हो जाता है । यह भी मुझे मनोवेदना देता है ।

–ऐसे कई प्रकार की परिस्थितियों में एक को मनोवेदना होती है । मनोवेदना के कई कारण होने पर भी मनोवेदना एक ही है ।

– एक ही प्रकार का अनुभव है ।

इसी प्रकार,

मेरे व्यापार में जो नष्ट आए हैं ये सब अचानक एक दिन में हल हो जाते हैं । इससे मुझे बहुत खुश मिलता है ।

(31)

इसी प्रकार जिन्होंने हमें निम्नस्तर में खण्डन किया, ये हमारे कर्म के सच्चे रूप समझकर हमें सराहते हैं । इससे हमें बहुत खुशी होती है ।

मेरे या मेरे बन्धु को हुए बड़ा शारीरिक रोग अचानक स्वस्थ हो जाता है तो तब भी मैं बहुत खुश हो जाता हूँ ।

–ऐसे हमारे मन बहलाव के कई कारण होते हैं ।

पर मन की खुशी एक ही है ।

यानी,

हम जिन घटनाओं को पसन्द करते हैं वे हमें खुशी करा देते हैं ।

जिन घटनाओं को हमने नापसन्द किया वे मनोदःख पहुँचाते हैं ।

यही हमारे मन का स्वभाव है ।

यह ऐसे नहीं है कि मेरे लिए एक और आपके लिए एक । हमारे सभी मन के स्वभाव ऐसे ही होते हैं ।

यह स्वाभाविक ही है कि अपनी सब चीजों को खो देते हैं तो हम दुःखी हो जाते हैं । अगर ऐसे सब चीज़ों को खो देने पर एक खुशी होता है तो वह प्रकृति के विरूद्ध है ।

अनुकूल परिस्थिति में खुशी होना और प्रतिकूल परिस्थिति में दुखी होना सब के लिए एक ही है ।

परिस्थिति के अनुसार क्रियान्वित होना ही हमारे मन का स्वभाव है ।

परिस्थिति के अनुसार सुःख –दुःख प्रकट करना ही हमारे मन का स्वभाव है ।

(32)

यह हम सबको मालूम है । फिर भी –

हम से अपने मनोनुभवों को ऐसे ही स्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसे भी न स्वीकार कर सकते हैं कि हमारे मनोनुभव सब स्वाभाविक ही हैं ।

जब हमें मनोवेदना होती है, तब वह स्वाभाविक होने पर भी,

– उसे बदलने के लिए हम संग्राम करते हैं । क्योंकि मनोवेदना हमसे सही नहीं जाती है ।

मनोवेदना से बच न सकनेवाले कुछ लोग पागल भी बन जाते हैं । यह दूसरी बात है कि जिस मन को मनोवेदना से बचना मालूम नहीं तब वह अपने आपको पागल बनाकर वेदना से बचता है ।

हमने पहले ही जानकारी पायी है कि स्वभाव के अनुसार ही हमारे अनुभव हमें प्राप्त होते हैं ।

एक घटना घटती है तो हमारा मन उस घटना को अपनाकर अपने स्वभाव के अनुसार अनुभव प्रदान करता है ।

खुशीपूर्ण परिस्थिति में खुश और दुःख पूर्ण परिस्थिति में दुःख देता है ।

हमारे सब अनुभवों के कारण हमारा अन्दरमन ही है । हमारे मन के स्वभाव के अनुसार अनुभव पाना हम रोक नहीं सकते हैं ।

(33)

हमारे स्वभाव जैसे हैं वैसे ही उचित अनुभव होते ही हैं ।

हमारा मनोभाव और हमारे मनः स्थिति दोनों हमारे अन्दरमन .. (Subconscious mind) को ही कहा जाता है ।

कैसे अनुभव देना है । कैसे अनुभव न देना है – ऐसे हम अपने अन्दरमन को काबू में न रख सकते हैं । अन्दरमन को हम सीधे नहीं पहुँच पाते हैं । वह हमारे वश में नहीं है ।

हमारा अन्दरमन, वह किस परिस्थिति को पाता है

– उस परिस्थिति के अनुसार, अन्दरमन के स्वभावानुसार, अनुभवों को प्रदर्शित करता है ।

उसके स्वभावानुसार ही अनुभव प्रकट होते हैं । हमारी इच्छानुसार अनुभव नहीं होते हैं ।

एक उदाहरण ले लेंगे । हमारे दफ़्तर में किसी एक कारण से हमारे अधिकारी और हममें अभिप्राय भेद होता है ।

उस परिस्थिति में हमारे अन्दरमन के स्वभावानुसार हमें क्रोध आता है । हमारे अन्दरमन हमारे वश में न होने के कारण वह अपने स्वभावानुसार हमें क्रोधित करा देता है ।

फिर भी उस क्रोध को हम अपने अधिकारी पर न दिखा सकते हैं । चाहिए तो क्रोध को बाहर दिखाए बिना कुछ हद तक रोक सकते हैं । पर क्रोधित हुए बिना हम नहीं रह सकते हैं ।

(34)

हमारे रोकने केलिए सोचने के पहले ही क्रोध आ जाता है ।

यह अपने आप होता है । हमारे स्वभावानुसार होता है ।

हम यही चाहते हैं कि हम सब खुशी से रहें; मनः शांति से रहें; बिना चिन्ता के रहें ; क्रोध और भय के बिना कार्य करें ।

पर हम जो चाहते हैं, वे अनुभव ही नहीं होते हैं ।

हमें अपने चाह के अनुभव भी होते हैं । अनचाहा अनुभव भी होता है ।

हम किस परिस्थिति में किस घटना में भाग लेते हैं उसके अनुसार, – हमारा मनोभाव अपने स्वभावानुसार प्रकट करनेवाले अनुभव को ही हम प्राप्त करते हैं ।

हम ऐसे निर्णय कर लिये होंगे कि कोई हमें कोसता है तो हमें उसे मुस्कुराकर स्वीकार कर लेना ही ठीक है । पर हमारे निर्णय कुछ भी हमारे अन्दरमन को सीधा नहीं पहुँचता है । कोई हमें कोसता है तो हमारे अनजाने ही उस पर क्रोधित हो जाते हैं। हमारे स्वभावानुसार क्रोध खुद पद्रर्शित होता है ।

हमारा निर्णय एक; हमारा स्वभाव एक । हमारे स्वभावानुसार अनुभव होते हैं न कि हमारे निर्णय के अनुसार अनुभव होते हैं ।

(35)

हम इसे समझने पर भी ऐसे नहीं चाहते हैं कि हमारे स्वभावानुसार ही अनुभव हो सकते हैं ।

हम इसमें बहुत जिद् हैं कि हमारे इच्छानुसार ही अनुभव चाहिए । इसलिए हमारे भावनामन और अन्दरमन दोनों के बीच में सदा मुटाव होते ही हैं, संग्राम चलता ही रहता है ।

दोनों के बीच के मुटाव को कैसे ठीक कर सकते हैं ?

दोनों के बीच में ठीक तरह का संबंध कैसे बनाये रखें ? ऐसे मान लें कि हमने किसी कीमती चीज़ को खो दिया है । इस परिस्थिति में हमारा मनोभाव हमें मनोवेदना देता है ।

हमारी मनोवेदना मन को दबाव और रोग कर देने की स्थिति में हैं ।

इस स्थिति में खोई गई चीज़ पुनः प्राप्त होती है ।

अब तक जिस मनोभाव ने हमें चिन्तित करा दिया अब वह चिन्ता करा देना बन्ध कर देता है ।

अब अपने स्वभावानुसार खुशी प्रदर्शन करने लगता है ।

पहली की परिस्थिति में चीज़ खो गई हैं । दूसरी स्थिति में खोई चीज़ मिल गई है ।

(36)

परिस्थिति के परिवर्तन से हमारे अनुभव में भी परिवर्तन आ गया है । परिस्थिति न परिवर्तित होने पर यह परिवर्तन न होता है ।

पर हर एक समय में क्या हम परिस्थिति को बदल सकते हैं ?

संसार की घटनाएँ हमारे वश में नहीं है । इसलिए परिस्थितियों को हमारी इच्छानुसार नहीं बदल सकते हैं ।

अब हमारा सवाल यही है –

क्या परिस्थिति के परिवर्तन के बिना हम अनुभव में परिवर्तन ला सकते हैं ?

इस सवाल का क्या अर्थ है ?

ऐसे मान लें कि हमें किसी अनचाहा अनुभव होता है । मान लेते हैं वह मनोदुःख है ।

हम यहीं चाहते हैं कि मन दुःखी न होना । पर वह हमारे काबू में नहीं है ।

अपनी चीजों को खो देने पर भी एक खुशी रहता है तो वह स्वभाव के विरूद्ध है ।

अन्दरमन हमारे वश में नहीं है ।

हमारे वश में हमारा भावनामन ही है ।

भावनामन अन्दरमन का प्रकटित रूप है पर अन्दरमन को वश में लाने की योग्यता उसमें नहीं है ।

हम अपने सांसारिक प्रयत्नों को अपने भावना मन की सहायता से ही पूरा कर देते हैं । साधारण व्यक्ति से लेकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक तक इस भावनामन की सहायता से ही सब काम कर सकते हैं ।

(37)

उसी प्रकार हमारे भावनामन अपने आधारभूत अन्दरमन को अपने काबू में लाना चाहता है। वह इसे जानता है कि ऐसे करना असाध्य है फिर भी अविवेक होकर अपने प्रयत्न को जारी रखता है ।

इस स्थिति में आध्यात्मिक साधनाएँ हमारी सहायता के लिए आती हैं। आध्यात्मिक साधक कई प्रकार के योग साधनाएँ और ध्यान करने के अभ्यास देते हैं ।

इससे एक आत्म साधक कुछ अनुभव की स्थितियों को प्राप्त कर लेता है । उन अनुभव की स्थितियों में उसका अन्दरमन काफ़ी काबू में ही रहता है ।

ऐसे मान लें कि उदाहरण के लिए एक मनुष्य भगवान की पूजा या भजन करता रहता है । उस समय उसका अन्दरमन उस परिस्थिति के अनुरूप एक शांतिपूर्ण भावना को ही प्रदर्शित करता है ।

उस स्थिति में एक मनुष्य क्रोध करने के संदर्भ होने पर भी उसको जट से क्रोध न आता है ।

अगर वह पूजा या भजन न करता है तो वह भी जरूर क्रोधित हुआ होगा ।

क्रोध को प्रेरित करने की स्थिति होने पर भी उसको क्रोध न होता है।

भावनामन से किये जानेवाले ऐसे आध्यात्मिक प्रयास हमारे अन्दरमन को एक सीमा तक काबू में रख ली है ।

पर यह निरन्तर हल नहीं हो सकता है । आगे हमें हमेशा आध्यात्मिक अनुभवों के साथ रहना भी असंभव है ।

(38)

आध्यात्मिक अभ्यासों से काफ़ी अच्छा फल प्राप्त करने की स्थिति में हम अपनी समस्याओं से तात्कालिक रूप में छूट पाकर मन के स्वास्थ्य को ठीक कराते हैं । इस प्रकार आध्यात्मिक अभ्यास हमें बहुत सहायता करते हैं ।

उसी समय–हम एक गलत नतीजे पर पहुँचने का कारण ये बनते हैं ।

यानी, आध्यात्मिक अभ्यासों से हमारे अन्दरमन को निरन्तर काबू में ला सकते हैं – ऐसे एक गलत विश्वास यह हमें प्रदान कर देता है ।

इसलिए हम आगे आध्यात्मिक अभ्यासों में लगकर किसी एक स्थान पर हम अपने आप को स्थगित कर लेते हैं ।

हम अच्छी स्थिति पर ही हैं ऐसे सोचकर किसी एक स्थिति का हम गुलाम बन जाते हैं ।

हमारी समस्याएँ निरन्तर हल न हुई हैं – यह खोज करने अधिक काल लगेगा ।

पूर्ण समाधान न हुआ है – यह खोज निकालने के बाद ही हम (किसी बिना वृद्धि की एक स्थिति में फँस गए हैं) समझ लेते हैं कि

आध्यात्मिक अभ्यास ऊँचे हैं । पर एक काल तक ही यह उपयोगी है।

(39)

उससे ज्यादा उनसे प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं ।

तभी सच्चे समाधान निकाल सकते हैं कि जब उसकी सीमा को समझकर उस भ्रम से छूट पाते हैं ।

हमारे अन्दरमन और भावनामन में हुए मुटाव को सीधा कर ठीक समाधान निकालने, हमने देखा है कि अपने भावनामन सीधे कुछ नहीं कर सकता है।

हमने इसे भी देखा है कि हमारे आध्यात्मिक अभ्यासों से थोडा ही सफलता पा सकते हैं ।

इसलिए, निरन्तर समाधान पाने का रास्ता ही क्या है ?

निरन्तर समाधान पाने का एक मार्ग है । वह है समझ लेने का मार्ग है –

The way of understanding.

समझना होते ही – सालों से होनेवाले सब संग्राम–क्षण में खतम हो जाते हैं । वह भी निरन्तर रूप में ।

भावनामन और अन्दरमन दोनों के सब मुटाव निरंतर समाधान हो जाते हैं । यहीं समझना है ।

साधारण शब्दों में कहने पर इसका नाम समझना, समझ लेना या स्पष्टता पाना ।

आध्यात्मिकता में इसे ज्ञान पाना नाम से संकेत करते हैं ।

(40)

बुद्ध ने इस समझने को बोध वृक्ष के तले प्राप्त किया ।

वे उसके पहले कई कठोर तपस्या और कष्ट साध्य व्रतों को किया करते थे ।

तपस्या के फल और व्रतों का फल उनको मिला । पर उनके आधार भूत शंकाएँ और आधारभूत समस्याएँ समाप्त नहीं हुई ।

तपस्या का फल अनुभव ही है । अनुभव आते हैं, रहते हैं, फिर गायब होते हैं ।

किसी भी अनुभव, मुक्ति नहीं ला सकता है । छुटकारा नहीं प्रदान करता है ; समझना नहीं लाता है ।

बुद्ध ने सभी मार्गो में प्रयत्न करके तप–व्रतों की सीमा को जान लिया है । उनकी अक्षमता को समझ लिया । उस स्थिति में ही उनको बोध वृक्ष के तले प्रज्ञान स्पष्ट हो गया । प्रज्ञान की स्पष्टता होता है तो होता ही रहता है ।

सभी शंकाएँ दूर होती हैं । सभी संग्रामों का अन्त आ जाता है । यह समझ बहुत दुर्लभ है । उस प्रकार के यह समझ अद्‌भुत और बहुत श्रेष्ठ होने पर भी – यह बहुत सरल है ।

सर्व साधारण है । आपसे और मुझसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है ।

ळळळळ

(41)

4. मुक्ति देनेवाला ''समझना ''

हमारे खोज के केन्द्र स्थान पर आए हैं ।

यह समझना वही है कि जिसको समझने से और किसी को समझने की आवश्यकता नहीं होती, जिसको प्राप्त करने से और किसी को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती, जिसको समझने से एक की सभी शंकाएँ दूर हो जाती हैं ।

यह समझना प्राप्त होने से मुक्ति नामक छुटकारा या स्वतंत्रता हमारी हो जाती है ।

'' यह समझना '' बहुत सीधा सादा है ।

इसलिए सरल मनस्थिति में इसे हमें कार्यान्वित करना चाहिए । पहले अध्याय में हमारे भावनामन और अन्दरमन के बीच के संग्राम को देख रहे थे ।

हमारा अन्दरमन अपने स्वभावानुसार अनुभवों को प्राप्त करने की परिस्थिति के अनुसार देता है ।

हमारे भावनामन के नापसन्द भावनाओं और अनुभवों को भी हमारा अन्दरमन प्रकट करता है ।

हमारा अन्दरमन ऐसे कुछ अभिलाषाएँ और सिद्धान्त रखता है कि ऐसे ही होना है, ऐसे न होना है ।

पर ऐसे कोई सिद्धान्त अन्दरमन को नहीं है ।

(42)

अपने स्वभावानुसार ही अन्दरमन कार्यान्वित होता है । वह खुशी प्रकट करेगा तो वह भावना मन को पसन्द है । दुःख प्रकट करने पर नापसन्द करता है।

खुशीपूर्ण प्रदर्शनों को जारी रखने के लिए हमारा भावनामन पसन्द करता है । उसी समय दुःखपूर्ण प्रदर्शनों को दूर करने को पसन्द करता है।

यहाँ क्या घटी है ?

ऐसे रख लीजिए कि हमारा अन्दरमन चिन्ता या भय को प्रदर्शित करता है ।

यहाँ क्या होता है ?

हमारे अन्दरमन से प्राप्त दुःख और भय ही हमारे भावनामन के रूप में प्रकट होता है।

अब भावनामन ही दुःखी और भयभीत है । वह भावनामन ऐसे ही अपने को न स्वीकार करता है ।

खुद परिवर्तित होना चाहता है। सोचता है कि दुःख और भय बदलना है । अपनी भावना स्थिति के विपरीत ही वह मुटाव रखता है । इसलिए मुटाव सचमुच अन्दरमन और भावनामन के बीच नहीं होता है । भावनामन ही अपने आप मुटाव सहित है ।

भावनामन सोचता है कि खुद दुःख प्राप्त कर लिया है और भयभीत हो गया है । इसलिए वह अपने आप को सुधारने केलिए संग्राम करता है ।

(43)

अपने आप को शान्ति रखने के लिए संग्राम करता है ।

सचमुच भावनामन कर्त्ता नहीं है । भावनामन एक प्रकटित भाव है। एक अनुभव है ।

भावनामन खुद कर्त्ता मानकर अपने आप को सुधारने के लिए लड़ता है।

यहाँ थोडी देर ठहरकर हमें अपने मन के चाल चलन को और एक पहलु में देखना उचित होगा ।

दुःख या भय कैसे होता है ?

ऐसे रख लीजिए कि एक दुःखपूर्ण घटना घटती है ।

हमारी बहुत पसन्द एक कीमती चीज़ गुम हो गई है – ऐसे रख लें । हमारा मन दुखी होता है ।

वह कैसे होता है ?

हमारे बाहर जो घटना घटी वह हमें क्यों सताता है ?

आग को छूएँगे तो वह हमें दाहता है । दाहने से हमें पीड़ा होती है । दु:खपूर्ण घटना हमें कैसे मनोवेदना पैदा कर देती है ।

हम दूरभाष में बोलते हैं । कई सौ किलोमीटर के दूर पर रहनेवाले लोगों से बोलते हैं । हम कितने ही जोर से बोलने पर भी हमारी ध्वनि आधा किलोमीटर से ज्यादा दूर नहीं जाएगा । पर दूरभाष में बोलते समय आधा किलो मीटर भी एक है, हजारों किलो मीटर भी एक ही है ।

(44)

दूरभाष में बोलते समय हमारी बोली की ध्वनि विद्युत मैग्नेटिक (Magnetic) तरंगों में परिवर्तित होकर दूसरे कोने में पहुँचकर फिर से बोली की ध्वनि में बदलकर सुनाया जाता है ।

इसी तरह होनेवाली सब घटनाएँ मन के अंश में बदलकर हमारे मन से ग्रहण किया जाता है ।

पेड़ को पेड़ और फूल को फूल–ऐसे याद की तरंगों में बदलने के बाद हमसे समझा जाता है । ऐसे ही सभी सांसारिक चीज़ें मनोमय बनकर ही समझे जाते हैं ।

इसी प्रकार सभी घटनाएँ, याद की लहरों में परिवर्तित होकर मनोमय बनकर घटनाओं के स्तर हमसे समझा जाता है ।

ऐसी घटनाएँ समझे जाने पर अच्छाई, बुराई, चाहा, अनचाहा, खुशी देनेवाला – दु:ख देनेवाला – ऐसे

हमारा मन उनको बाँटता है ।

एक घटना को दु:खी घटना – ऐसे मन में समझने के कारण वह घटना दु:खी घटना होती है ।

ऐसे विपरीत रूप में तुरन्त सोचने लगता है कि ''वह घटना ठीक नहीं हैं, उसे ऐसे न घटना है, उसे ऐसे ही होने न देना है । उसे बदलना ही चाहिए ।

जब तक विपरीत पक्ष में कार्यान्वित होता है तब मन में तनाव ही लाता है । क्योंकि उपस्थित स्थिति को जरूर बदलने की एक स्थिति हमें पैदा कर देती है ।

(45)

एक चीज़ होने पर ऐसा सोचना हमारा स्वभाव है कि उस चीज़ को न होने देना। जब यह साध्य नहीं है तब मन को दबाव देता है ।

ऐसे उस चीज़ के न होने की सम्भावना होने पर भी, उसे तुरन्त हटा दिया जाए । उसे न होने देना – ऐसे भाव ही मन को दबाव देता है ।

इसी प्रकार – एक दुःखी घटना घटने की संभावना न होने पर भी कहीं यह घटती है तो – ऐसे विचार भी मन को दबाव देता है ।

जिस उदाहरण को हमने देखा उसे ही लेंगे ।

हमारी एक चीज़ गुम हो जाती है – ऐसे रख लीजिए ।

हमारी एक चीज़ गुम हो जाने की घटना – एक याद के रूप में हमारे मन में पंजी हो जाता है । उस स्थिति में –

ऐसे एक विपक्ष के सोच हममें पैदा होता है कि वह चीज़ न गुम हो जाता है तो ।

यह सच ही है कि वह चीज़ गुम हो गयी है ।

ऐसे सोचना सच्चाई से मुटाव होने का एक विपक्षीय कार्य है कि 'उसका गुम हो जाना मुझे पसन्द नहीं है । मैं उसका न गुम हो जाना ही चाहता हूँ ।

(46)

हमारे विपक्षीय चाह के अनुसार हल तत्क्षण ही प्राप्त न होता है। कुछ चाह तो अंत तक समाधान न होनेवाले हैं ।

इसलिए हमारे विपक्षीय विचार ही दुःख, भय, कोप जैसे अनचाही भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं ।

घटना को न माननेवाले विपक्षीय विचार ही मनोदुःख के रूप में प्रकटित होते हैं ।

आगे हम क्या करते हैं ? हमारे मनोदु:ख भी हमें पसन्द नहीं हैं । हमारे भय, कोप, द्वेष ये भी हमें नापसन्द है ।

उनको न मानने का विचार उठता है ।

हमारे न मानने से दु:ख दूर होने के बदले और भी दृढ़ हो जाता है । ऐसे,

हमारे अस्वीकार करने की हमारी सभी अनचाही भावनाएँ दृढ़ हो जाती हैं ।

आगे, हम जहाँ से रवाना हुए वहीं आएँ । हमने क्या देखा ? हमने देखा है कि भावनामन खुद दु:खी हुआ समझकर, अपने आप भयभीत समझकर, अपने को सुधारनेवाले कर्त्ता के रूप में खुद सोचता है ।

सचमुच हमारा भावनामन कर्त्ता नहीं है ।

(47)

वह हमारे अन्दरमन ऊब आनेवाली एक भावना ही है ।

वह अन्दरमन से निकलकर भावनामन के रूप में बहकर फिर वह गायब होता है ।

भावनामन माने बहनेवाले एक झरना के जैसा है । वह बहता ही रहता है ।

हम ऐसे नियंत्रण से नहीं कर सकते हैं कि '' हमें ऐसी भावनाएँ ही आनी चाहिए, ऐसी भावनाएँ न आनी चाहिए ।'' हमारे इच्छानुसार भावनाएँ नहीं आती हैं ।

हमारे अन्दरमन के अनुसार ही भावनाएँ आती हैं । उसके स्वभावानुसार की भावनाओं को ही वह प्रकट करता है । भावनामन – अन्दरमन से बनाया गया एक रूप है । अपने आप को बदलने की स्वतंत्रता भावनामन को नहीं है ।

अपते आप बदलने के लिए संग्राम करने से ही वह अपने को दृढ़ बना देता है ।

हमारी भावनाएँ उत्पन्न होने के लिए हमारी इच्छाएँ कारण नहीं होती है ।

हमारी इच्छानुसार होनेपर इच्छित भावनाएँ ही होनी चाहिए । हमारी सब भावनाएँ परिस्थिति के अनुसार खुद उत्पन्न होकर खुद गायब हो जाती हैं ।

(48)

भावना कभी स्थिर नहीं होती है । भागने की स्वभाववाली है । हर एक क्षण में बदलनेवाली है । इसलिए – किसी भावना को हमें दूर करने की ज़रूरत नहीं है ।

किसी भावना को यह नहीं चाहिए ऐसे न मानने पर,

किसी भावना को यह चाहिए – ऐसे पकड़ लेने पर,

हम अपनी भावना के स्वाभाविक बहाव में रूकावट बनते हैं ।

या तो – खुद उत्पन्न होनेवाली भावनाएँ खुद दौड़ कर गायब होंगी ।

हमें उसे हटाने की आवश्यकता नहीं है । क्या यह सच है ?

यही व्यावहारिक सत्य है – इस बात को हमें बिना संदेह के समझ लेना चाहिए । इसे भी समझ लेना है कि हमारी भावनाओं को बदलने के लिए हमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है ।

इसका अर्थ पूछने पर – हमें अपनी भावनाओं को मन खोलकर स्वीकार करना है – आगे –

(49)

हमें प्राप्त करनेवाली भावना–स्तर और कोई नहीं है – इसे भी निर्णय करना है –

हमें ऐसी सरलता समझ में आना है कि हमें अपनी स्वाभाविक भावनाओं के अतिरिक्त और किसी भावना की प्रतीक्षा न करना है ।

ऐसे समझ लेते समय – हमें क्या हुआ है ?

हमारा भावनामन अपनी योग्यता को पहचानता है ।

अपने कार्य से विपक्षीय बन्धनों तथा प्रतीक्षाओं को छोड देता है। उस स्थिति में हमारे भावनामन को करने के लिए कुछ बाकी है क्या? भावनामन को करने के लिए कुछ भी न होने की स्थिति में अन्दरमन से निकलनेवाली

सभी भावनाएँ किसी रूकावट के बिना – भावनामन बनकर, दौड़कर गायब होती हैं । बिना रूकावट की भावना प्रवाह बनती है । आगे,

उसे भावना नहीं कह सकते हैं । भावना–प्रवाह ही उसे कहना है । उस स्थिति में हमारे अन्दरमन का गुण व स्वभाव भी बदलने लगते हैं । अब हमें पूछने के लिए और एक प्रश्न है ।

(50)

आध्यात्मिक दुनिया में हमें प्राप्त करने की किसी एक स्थिति है क्या ? हमारे योग–अभ्यासों तथा ध्यान–अभ्यासों से हम कुछ अपूर्व भावना–स्थिति प्राप्त कर सकते हैं ।

ये भावनाएँ कितना अद्‌भुत भी क्यों न हों भावनामन के दौड़ में ये भी गायब ही हो जाएँगी ।

कितनी श्रेष्ठ भावनाएँ होने पर भी ये थोडे ही काल स्थिर रहेंगी । फिर जैसे आए वैसे गायब होंगे ।

जो उत्पन्न होकर आते हैं वे सब गायब होते ही हैं । अनुभवों का नियम यही है ।

किसी एक अनुभव पर हम विश्वास रखेंगे तो वह हमारी मुक्ति को रोकता है । हमारा भावनामन जब–सभी भावनाओं को स्वीकार करके उनको स्थिर होने या गायब होने देकर सबको स्वतंत्रता देता है तो, तभी वह भी मुक्ति पाता है ।

मुक्ति माने प्रयासों से छुटकारा पाना है । भविष्यत काल से छुटकारा पाना है । मनमुटाव और संग्रामों से छुटकारा पाना है । इस मुक्ति पाने की स्थिति में –

(51)

हम अपने भय और दुःख के विपरीत कार्य न करेंगे । ऐसे ही – सुखों के पीछे भी नहीं दौडेंगे ।

ये सुख चाहें लौकिक हो या आध्यात्मिकता से संबंधित हो,

यह मुक्ति माने एक प्रकार की छूटकर दौडने की मनः स्थिति नहीं है। यह सभी भावनाओं को आसानी से, धैर्य से स्वीकार करने की मन स्थिति है।

'' यह मुक्ति '' – भावनाओं के सब विरोधी कार्य – छूटकर दौड़ने का कार्य ही हैं – इसे समझकर – सभी भावनाओं को प्रत्यक्ष सामना करके स्वीकार करने का धैर्य है ।

यह मुक्ति सभी भावनाओं के लिए हमारे मन खोलकर, फैलाकर खुला रखना ही है । यही समझना है ।

मुक्ति देनेवाला समझना है ।

यह समझना बहुत सरल है । – यहाँ और एक विषय भी मुख्य है । यानी –

हम समझ लिए हैं – इसे भी समझना है ।

समझना ही काफी नहीं है ।

(52)

समझ लिए हैं – इसे भी समझना है ।

उन दिनों में आचार्यों को '' गुरूनाथ '' कहते थे । प्रज्ञान का विवरण देने से उनका काम नहीं खतम होता है । गुरू की सच्चाई को स्पष्ट रूप में बताने पर – शिष्य के समझने की स्थितियाँ – '' तुम समझ लिए हो – ऐसे इस जानकारी को कायम करना भी आचार्य का काम है ।

ज्ञान माने क्या है ? – इसे एक, मनुष्य सिर्फ़ समझना ही काफी नहीं है । ज्ञान माने क्या है – इसे समझ लिए हैं – इसे भी समझना है ।

योगवाशिष्ट में ऐसी एक कथा कहा जाता है :–

एक व्यक्ति चिन्तामणि नामक कीमती हीरा की खोज़ में जंगल में गए । जिसने उसका विवरण दिया, उसको एक चेतावनी भी दी है । '' चिन्तामणि बहुत अपूर्व पत्थर है । तुम्हें भाग्य होने पर ही मिलेगा । ऐसे तुझे मिलने का भाग्य होने पर भी तुरन्त नहीं मिलेगा । अथक परिश्रम से, मासों वर्षों तक भी ढूँढना पड़ेगा । तुम्हारे सहनशीलता और अथक परिश्रम के कारण ही वह चिन्तामणि पत्थर तुझे मिलेगा'' । इस चेतावनी को सुनने पर भी वे थके बिना धीरज़ धरकर जंगल जाते हैं । वे ऐसे मनोवैराग्य से उस चिन्तामणि की ढूँढ निकाले बिना नहीं लौटूँगा कहकर उसे ढूँढने लगते

हैं । भाग्यवश वह अपूर्व चिन्तामणि पत्थर उसके ढूँढने के आरम्भ में – आधे घण्टे में ही उनको मिलता है ।

(53)

पर उनको यह विश्वास न था कि उनको जो मिला वह चिन्तामणि ही है । ये ऐसे सोचने लगे कि वर्षों तक ढूँढने पर भी न मिलनेवाला वह अपूर्व चिन्तामणि पत्थर कैसे आधे घण्टे में मिलेगा ? इतने शीघ्र मिलने के कारण वह 'चिन्तामणि' नहीं हो सकता हैं । ऐसे सोचकर उसे फेंककर दूसरे 'चिन्तामणि' पत्थर की खोज में निकल पड़े । यही वह कहानी है ।

समझने के नाम से हमने किसे खोज़ लिया – वह ही मुक्ति प्रदान करनेवाला समझना है ।

पर हम अधिक प्रतीक्षाओं के साथ रहने के कारण उसे खोकर लाँघने की आपत्ति भी है। इसलिए हमें उसे परीक्षा करके साबित करना है – एक छोटा सा उदाहरण ।

ऐसे रखिए कि मेरे हाथ में बिना भार की एक थैली को तरकारियाँ खरीदने ले जाता हूँ । उस थैली की सिर्फ हैडिंल ही भारी है । तरकारी खरीदते समय ही मालुम हुआ कि थैली कहीं छूटकर गिर गई है । वह थैली भारी नहीं है । इसलिए उसका नीचे गिरना – मुझे पता नहीं था । पर तरकारी खरीदने के बाद मुश्किल से उसे ले जाने पर, वह गिरता है तो वह तुरन्त मालुम हो जाएगा । क्योंकि भोज मालूम है । वह भोज अचानक न होने पर तुरन्त हमें मालुम होता है ।

(54)

इसीलिए आध्यात्मिक शास्त्रों में कहा जाता है कि दुःख और चिन्ता हमें सीधे सत्य की ओर ले जाते हैं । दुःख और चिन्ता हमें वेदना रूपी भोज दे देते हैं।

समझने के ज़रिए हम मुक्ति पाते समय दुख और चिन्ता गायब हो जाते हैं । बिना भोज के भाव आता है।

हममें जो परिवर्तन हुआ है उससे हम अपने समझने की शक्ति और मुक्ति का प्रदर्शन साबित कर सकते हैं ।

प्रत्येक क्षण में हम किसी एक भावना के साथ रहते हैं । किसी एक भावना आती है । फिर वह गायब हो जाती है और एक भावना आती है । फिर वह भी गायब होती है ।

ऐसे एक झरने के जैसे हमारी भावना भी प्रत्येक क्षण में भावना के झरने के रूप में बहता रहता है ।

हममें जो भावनाएँ आती जाती हैं उनमें ज्यादातर, साधारण बिना मुख्यत्व की भावनाएँ होने के कारण उनका आना जाना, हम इनको उतना ध्यान में न लेते हैं ।

पर हममें अनुभव की भावना चिन्ता के रूप में या किसी एक मनोवेदना के रूप में होने पर हम उन्हें न देखे बिना ऐसे वैसे न लेते हैं ।

उसकी वेदना ही हमारे ध्यान को खींचता है ।

(55)

दौड़कर जाना ही हमारी भावनाओं का स्वभाव है । सब चलते रहते हैं । हमारे विचार भी चलता रहता है ।

अन्य भावनाओं को उनकी गति में छोडने के जैसे हमारे दुःख व चिन्ताओं को उनकी गति में जाने देना आसान नहीं है । 'समझ' होने पर ही वे अपने आप चलने लगेंगे । हमारी वेदना भी चलने लगेगी । पीड़ा भी चलने लगेगी । पीड़ा और वेदना चलने–लगने पर – हमें मालूम होता है कि हम मुक्ति पा लिए हैं ।

हमें जो समझना हुई है वह सच्चा समझना भी निश्चय होता है । क्योंकि वह समझ होने पर ही साध्य होता है कि हमारी सभी चिन्ताएँ अपने आप दौड़कर गायब हो जाती है ।

यही श्रेष्ठ समझ है कि जो समझ सब को चलने–जाने अनुमति देती है, वही ज्ञान की समझ है ।

ज्ञान माने सबको चलने के लिए अनुमति देनेवाला है ।

हमारी भावनाओं को जाने केलए अनुमति देना ही ज्ञान की स्थिति है ।

ज्ञान की स्थिति माने किसी एक अनोखी अनुभव–स्थिति है – ऐसे हम कल्पना करें तो वह हम अपने आप को धोखा देना ही है ।

यह अज्ञान है कि कितने भी श्रेष्ठ अनुभव क्यों न हो उसे कायम रखना है । सबको जाने देना ही ज्ञान – स्थिति है ।

(56)

कोई ज्यादा चिन्ता से रहें तो अपने भावनामन को स्वतंत्र रूप में क्रियान्वित करने से – अपनी चिन्ताओं से छूट जाते हैं । इसलिए वे, खुद समझ लिए हैं – इसे समझते हैं ।

इसी प्रकार – जब एक मनुष्य आध्यात्मिकता में रूचि और लगन रखता है तभी वह निश्चय कर सकता हैं कि मैंने इस 'समझ' को समझ लिया है ।

तब भी इस समझ को निश्चय कर सकते हैं कि जब मुक्ति प्राप्त किए ज्ञानियों से प्रत्यक्ष बातचीत करके स्पष्टता पाते हैं ।

यह समझ – निश्चय करने की स्थिति में निरंतर रूप में आपका होता है ।

(57)

5. भावनाओं का विकास

हमने देखा है कि हमारे अन्दरमन के प्रदर्शन ही हमारी भावनाएँ हैं । ऐसे मान लीजिए कि एक गलत कार्य करने के लिए हमारा अन्दरमन भावनाएँ प्रकट करता है । हमें क्या करना है ? हमने प्रतीक्षा किया है कि हमारी भावनाओं को ऐसे ही स्वीकार करना है । भावनाओं की प्रेरणा से गलत कार्य करेंगे क्या ?

हम अपने दोस्त के साथ उनके परिचित व्यक्ति के घर जाते हैं । वहाँ हाल में बातें करते करते चाय, बिस्कुट खाते हैं । बिस्कुट पाकेट की कागज को जब कूडेदान में डालने हम जाते हैं तो सिर्फ हमने ही देखा कि उसमें एक हीरे की अंगूठी गिर पडी है । हमारी इच्छा कई हजार रूपये वाले कीमती अंगूठी पर जाती है । अगर हम उसे लेते हैं तो भी देखनेवाला कोई नहीं। आगे उस घर का मालिक भी करोडों रूपयों के अधिपति हैं । वे भी खोई गई अंगूठी को अनदेखा करेंगे । हमें जो भावना हुई उसे ही स्वीकार करके–उस अंगूठी को लेकर अपनाएँगे क्या ?

भावना केवल हमारी होने पर भी हमारा कार्य कई लोगों से सम्बन्धित है ।

(58)

इसलिए हमें कई पहलुओं को ध्यान में लेना है । कई लोगों के साथ हम इस समाज में रहते हैं । हर एक को विविध प्रकार के इच्छा–द्वेष होते हैं । जीवन की रीतियाँ होती हैं । प्रत्येक मनुष्य सिर्फ अपने–अपने चाह और जीवन की सुविधाओं के लिए मुख्यत्व दे सकते हैं ।

इस स्थिति में एक दूसरे से संबन्ध रखने में मनमुटाव होना सहज ही है । एक ही चीज़ को पाने के लिए कई लोगों का सामना करना सम्भव ही है । वह स्पर्धा न्याय होने पर भी स्पर्धा, स्पर्धा ही है । इस स्थिति में – समाज को चलाने के लिए न्याय, धर्म और शील की आवश्यकता है ।

सब उसे सम्मानित कर देने पर ही एक सामाजिक जीवन हलचल के बिना चलता है ।

सब अपने मन पसन्द मार्ग पर जाने के लिए अनुमति देंगे तो हम जंगली जीवन पर जाएँगे ।

जब हम बहुत बड़े रास्ते पर प्रवेश करते हैं तो रास्ते सम्बन्धी विधि–नियमों को स्वीकार करना चाहिए । या तो हमें समस्याएँ आएँगी । दूसरों को भी समस्या हो जाएगी ।

(59)

हमारी भावनाएँ तो पहले ही हमारे देखने के अनुसार शरीर से प्रकट होनेवाली ही हैं । ये हमारे शरीर में प्रकट होकर गायब होती हैं । उनको हम अपने शरीर व मन से ही समझ सकते हैं । ये सब हमारे अन्दर ही होनेवाली क्रियाएँ हैं ।

हममें भय, द्वेष, कोप या चिन्ता जैसी भावनाएँ हो सकती हैं । इसके संबन्ध में हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है । उनके विपरीत अगर हम कुछ करने का प्रयास करेंगे तो हममें संग्राम और समस्याओं को आमन्त्रित करना ही है ।

पर, इसी विधियों को हमारे बाहरी कार्यों के लिए मत लाना है ।

दोस्त के घर में हमें अंगूठी पर जो अभिलाषा आई, वह गलत नहीं है । वह हमारे स्वभाव का प्रदर्शन ही है ।

उस अंगूठी को हम उठा लेंगे तो वह गलत है ।

रास्ते में जाते समय एक बच्चा गलत ही ट्राफ़िक में प्रवेश करना देखते हैं । हमें उसकी सहायता करके उसे बचाकर रिश्तों से सौंपना ही ठीक है । जो भी जैसी भी होती है उसे वैसे ही स्वीकार करें – ऐसे चुप रहना ठीक नहीं है ।

बाहरी कार्यों को बाह्य परिस्थितियाँ ही निर्णय करनी है ।

एक अमुक परिस्थिति में एक बुद्धिशाली न्याय व्यक्ति कैसे बर्ताव करेगा वैसे करना ही ठीक है ।

(60)

परिस्थितियों को बदलना आवश्यक हो तो उसे बदलने का प्रयास करना ही ठीक है । परिस्थिति को ऐसे ही स्वीकार करना ठीक नहीं है । बुरी परिस्थिति को निरन्तर बुरी परिस्थिति में रहने देना ठीक नहीं है । पर सिर्फ हमारी भावना मात्र सम्बन्धित हो तो वही हमारा स्वभाव है – ऐसे उसे स्वीकार करना ही ठीक है ।

हमें बदलनेवाले किसी जिम्मेदारी को हमें स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं हैं । ठीक है,

हमारी भावनाएँ और बाहरी आचार एक दूसरे से सबंन्धित होने पर – हमें कैसे बर्ताव करना है ?

उदाहरण के लिए – पड़ोर्सीवाले के बुरे आचरण से हमें क्रोध होता है । हम क्या करेंगे ? उससे झगडा करेंगे ?

क्रोध स्वाभाविक है । उसे हमें स्वीकार करना ही है । क्रोध के विपरीत हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं । वह सिर्फ हम में ही होनेवाली भावना है । उसे हममें पूरा का पूरा स्वीकार करना ही चाहिए । वैसे होने पर क्या हमें अपने पड़ोसीवाले से झगड़ा करने का अर्थ है ?

(61)

नहीं । ऐसा नहीं है । पड़ोसीवाले से जितना हो सकता है उतना उसके अनुकूल ही रहना चाहिए । जितना हो सकता है उतना सभी से अच्छी रिस्ते से बर्ताव करना ही श्रेष्ठ है ।

परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक आचरणों व विधि विधानों को सम्मानित करके आचरण करना ही ठीक है ।

पर हमें अपनी आन्तरिक स्थिति के किसी आचरण या विधि विधानों का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है । उदाहरण के लिए,

कई मंजिलोंवाले इमारत के उपरी मंजिल पर खडे रहते हैं । ऐसे रख लीजिए कि अगर हम यहाँ से नीचे गिरेंगे तो क्या होगा – ऐसा विचार हमें होता है ।

उसे हम क्या क्रियान्वित करके देखेंगे ?

ऐसे विचारों को पार कर बादलों और हवा की तरह हट जाएँगे । उसे कार्यान्वित करके नहीं देखेंगे ।

इसी तरह हमारी सभी भावनाएँ पार कर जानेवाले बादल ही हैं । पार करके जानेवाली भावनाओं से हमें गले बाँधकर संग्राम करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं ।

(62)

ये रहने के लिए चाहना या न रहने के लिए चाहने पर, हम उन्हें न सताने के पक्ष में – वे अपने आप आकर, खुद गायब हो जाती हैं ।

पर – हमारे बाहरी आचरणों के पक्ष में जो ठीक हैं, अच्छे हैं उसे ही करना चाहिए ।

उनकी ओर से अच्छाई–बुराई होता है । ठीक या गलत होता है ।

प्रत्येक को अच्छे और ठीक कार्य करने का कर्तव्य है ।

हमारी भावना की ओर में हमें अपनी भावनाओं को सीधा करने का कर्तव्य नहीं हैं । ठीक भावना, गलत भावना या बुरी भावना ऐसे कुछ भी नहीं है ।

सच में, पार कर जानेवाली भावना ही है।

वे अपने आप आकर खुद चली जाती हैं ।

उनके विपरीत संग्राम करें तो हम जीवन भर संग्राम करने पर भी वे खतम न होते हैं ।

हमारी सभी भावनाएँ – समान ही हैं – एक ही जैसी हैं । ऊँची भावना या नीची भावना – ऐसे कुछ भी नहीं है ।

(63)

उसी प्रकार साधारण भावना या दैविक भावना – किसी का श्रेष्ठ मुख्यत्व नहीं है ।

सभी भावनाएँ हमारी शारीरिक भावनाएँ ही है, पार कर जानेवाली तात्कालिक भावनाएँ ही हैं ।

उनमें किसी को ठीक है या गलत है – ऐसे हम चुनेंगे तो समस्याएँ न बन्धन होनेवाली हैं । नासमझ भी न रूकनेवाली है।

सभी आध्यात्मिक भावनाएँ निश्चय ही दैविक हैं । संदेह नहीं है । उन्हें वैसे ही रहने देंगे । वे भी आएँगे, जाएँगे । जो आएँगे वे खुद आएँ, खुद गायब हो जाएँ ।

हमें किससे सावधान रहना है कि, जो साधारण भावना या दैविक भावना हो, उनपर आसक्ति न रखना है ।

ऐसे हम उनपर आसक्ति न करें तो क्या होता है ?

इस स्थिति में हमारी मानसिक क्रिया के नींव पर ही परिवर्तन होता है।

यह हमारी चाह का परिवर्तन नहीं है ।

फिर भी वहाँ एक परिवर्तन होता है ।

वैसा परिवर्तन करना भी उसका स्वभाव है ।

(64)

वैसे न होकर हम अपनी भावनाओं से मनमुटाव करें तो ऐसे आधारभूत परिवर्तन होने की संभावना भी न हुआ होगा ।

अच्छा या बुरा – ऐसे हम अलग देखने की आदत रखने के कारण हम ऐसे कर लिए हैं कि अपनी भावनाओं को ऐसे अलग करके देखकर सच्चा परिवर्तन न होने देते हैं ।

पर उसका सत्य क्या है – वैसे द्वेष करने योग्य भावनाएँ ही हमारे स्वभाव होते हैं । जो स्वभाव हैं उन्हें हम न मानते हैं । ऐसे न मानने के कारण हम खुश होते हैं कि अच्छे प्रयास किए हैं । सच में अच्छे प्रयास की ओढ़नी से हममें जो सच्ची भावनाएँ हैं उन्हें ढ़कते हैं ।

इससे उसे आधार भूत परिवर्तन करने से हम ही रोकते हैं ।

हमारी भावनाएँ हमें अनचाहा प्रतीत होंगी ।

बाह्य रूप घृणापूर्ण होगा। पर उनको अपने आप हम पैदा होकर गायब होने की जगह देंगे तो हमारा मन दूसरी पहलु में आ जाएगा ।

(65)

हमारी भावनाओं से लड़कर उनको अच्छे बनाने के प्रयत्न करें तो हमारा जीवन ही संग्राम हो जाएगा । हमारी भावनाओं को किसी परिवर्तन के बिना वैसे ही स्वीकार करना ठीक है ।

ऐसे समझना ही ठीक समझ होगा ।

इससे जो भावना है उसे चले जाने की अनुमति देते हैं ।

सभी भावनाएँ प्रवाह करके दौड़कर गायब होती हैं । हमारी समझना भी निश्चित होता है ।

इस समझ में निश्चित एक मनुष्य का पूरा जीवन ही – एक भावना प्रवाह के रूप में, नाम देकर न पुकारनेवाले अंश में बनते हैं । उसका आरम्भ नहीं है । अन्त भी नहीं है । वह एक बिना अन्त का प्रवाह है ।

(66)

6. मुक्ति

आध्यात्मिक दुनिया के बारे सोचेंगे तो, वहाँ बताने वाले अपूर्व सिद्धियाँ व अमानुष्य शक्तियों के बारे में सोचकर देखे बिना नहीं रह सकते हैं ।

कई महानों के जीवन के इतिहास, उनके जीवन में प्रदर्शित किए अद्‌भुतों के बारे में हमने पढ़ा है।

ये सब क्या ? पहले ही हमारे देखने के अनुसार, – हमारी आन्तरिक मन अद्‌भुत शक्तियों तथा कई प्राकृतिक रहस्यों को अपने में रख लिया है।

हम अपने योग, अभ्यासों द्वारा तथा ध्यान रीतियों द्वारा उस आन्तरिक मन में प्रवेश कर सकते हैं ।

उस स्थिति में, वैसे कई अपूर्व शक्तियों को हम अपने वश में ला सकते हैं।

आपको और मुझे वैसी अद्‌भुत शक्तियाँ होने पर क्या होगा ?

कई लोग हमें अद्‌भुत घटनाएँ प्रदर्शन करनेवाले के रूप में देखेंगे ।

पर – वैसी अपूर्व शक्तिवाले एक मनुष्य का ज्ञान विकसित होने की जरूरत नहीं है । ज्ञान स्थिति न पाने की स्थिति में वैसी अद्‌भुत शक्तियाँ प्राप्त करने की संभावनाएँ हैं ।

(67)

ज्ञान विकसित होना एक है; अद्‌भुत शक्तियाँ पाना दूसरा है । ज्ञान विकसित हुए लोगों को ऐसी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं ; या न भी होती हैं ।

पर, मूल स्थिति में वे सब से मुक्ति पा लिये होंगे ।

वैसी अद्‌भुत शक्तियों को प्राप्त होना ही चाहिए – ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है ।

सच में वे, किसी एक स्थिति को चाह कर खोज किए बिना, – जीवन में न अन्त होनेवाले जीवन के रूप में प्रवाह करते रहेगा ।

उसको किसी एक को पकड़कर अपनाने की आवश्यकता भी नहीं हैं।

उसी समय कुछ बातों को अपने से दूर रखने की भी आवश्यकता नहीं है, जरूरत नहीं है ।

वे प्रवहित होकर चलते रहते हैं ।

उसी तरह – उनके साथ सभी प्रवहित होकर दौड़–जाने को भी वे अनुमति देते हैं ।

वह एक स्वतंत्र कार्यक्रम है ।

इस के सम्बन्ध में एक छोटी सी कहानी है ।

(68)

एक आदमी धनराशी की खोज में जंगल में घूम रहा था । उसने सुना है कि जंगल के किसी भाग में धनराशी है पर उसके बारे में ठीक परिचय न प्राप्त किया । इसलिए वह कई जंगलों में घूमता फिरता है ।

वैसे कुछ भी न प्राप्त कर, थककर घूमते समय, एक पेड़ के नीचे एक मुनि को देखा । उनसे धनराशी के बारे में कुछ मालूम है क्या ?– ऐसा पूछा । उन्होंने भी मुस्कराकर चाँदी के सिक्के पड़े गये स्थान को दिखाया ।

उनके कहेनुसार चाँदी की सिक्कों को ले लिया । धन्यवाद कहने जब उस मुनि के यहाँ गया तब उनसे पूछा '' क्या और कोई धनराशी हैं ?''

मुस्कराकर मुनिवर ने भी सोने के सिक्कों की जगह को दिखा दिया । वह भी खुशी होकर सोने की धनराशी लेकर फिर से धन्यवाद कहने आया । मुनिवर से उसने पूछा कि क्या इससे भी श्रेष्ठ धनराशी है ? मुनिवर ने भी हँसते हुए उसको हीरे की धनराशी को दिखा दिया । वह भी उसके कहेनुसार जाकर हीरे की धनराशी को ले लिया । तभी उसको एक प्रश्न उदित हुआ ।

(69)

राजा भी उसका दास बनने की परिस्थिति आ जाएगी । आदर और सम्मान बहुत ऊँचा हो जाएगा।

सभी को प्रदान करनेवाले हैं ये धनराशी । फिर भी इसके बारे में जानने पर भी इस मुनि ने इन्हें लेकर क्यों अपनेलिए उपयोग नहीं किया ?

यह प्रश्न उसको सूझा । उसने उसके बारे में मुनि से पूछा ।

मुनि हँसते थे । फिर कहने लगे, '' इससे भी श्रेष्ठ राशी का भण्डार मेरे पास है । उसे पाने के बाद दूसरी चीज़ नहीं चाहिए । जिसने उसे पा लिया उसने सब को पा लिया। उसके अतिरिक्त वे और कोई भण्डार या योग्यता पाने पर भी वे और भी चाहनेवाले ही होंगे । उनकी चाह पूर्ण नहीं होती है । सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली राशी है प्रज्ञान नामक ''मुक्ति'' ।

मुक्ति ही सच्ची धनराशी है । वही आध्यात्मिक दुनिया की श्रेष्ठ स्थिति है ।

सिद्धियाँ, शक्ति का प्रदर्शन ऊँचे आध्यात्मिक अनुभव की भावनाएँ – उससे देखी गई धनराशी की जैसी हैं । वे बहुत श्रेष्ठ हैं । शंका नहीं है।

साधारण रूप में न मिलनेवाला एक अपूर्व भावना है । संदेह नहीं है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि आम मनुष्य जितना पाता है उससे भी हजारों गुणा श्रेष्ठ है ।

(70)

पर – वह कितनी भी ऊँचा अनुभव या शक्ति भी क्यों न हो – सबको न प्राप्त करने के जैसा है।

ज्ञान मुक्ति पाना ही सबको पाने के समान है । उसी स्थिति में उसके सब संदेह और भ्रम दूर हो जाते हैं ।

वह मुक्ति माने सबको पाने की स्थिति नहीं है । वह सब बन्धनों से छूटने का है ।

– वह प्राप्ति चाहे लौकिक हो या अलौकिक – दैविक हो, किसी में न स्थित होनेवाली, होश में होनेवाली स्वतंत्रता है ।

उस मुक्ति में सब–प्रवाह बनकर प्रवहित होते हैं । मैं रूपी भावना के बारे में हम क्या जानते हैं ? वह अक्सर बुरा ही कहा जाता है । मैं माने अहंकार नाम से निन्दा किया जाता है । ऐसे कहा जाता है कि एक को बिना गर्व के रहना चाहिए ।

इसी प्रकार एक को बिना ममकार के रहना चाहिए – ऐसे भी कहा जाता है ।

अहंकार – ममकार माने क्या है ?

अहंकार माने मैं कहकर अपने आप को ही प्राधान्यता देने का भाव है । मैं रूपी भाव को हम सदा महसूस करते रहते हैं । बिना मैं रूपी भाव के समय ही नहीं है ।

(71)

' आप घर में कब न होते हैं ? आप घर में कब होते हैं ?' ऐसे पूछ सकते हैं ।

उसी प्रकार – 'आप दफ़्तर में कब होते हैं ? कब दफ़्तर में न होते हैं ? – ऐसे पूछ सकते हैं । पर – 'आप कब न होते हैं ?' क्या ऐसे पूछ सकते हैं आप जिस जगह पर होते हैं, उस जगह पर आप होते हैं ।

गहरी नींद में ही अहं का भाव न होता है । नींद में भी स्वप्न आने पर वहाँ भी मैं आ जाता है । मैं माने हमारी भावना और विचार का एक मिश्रित अनुभव है । हमारे विचार होने तक मैं रूपी भावना होती ही रहती है ।

बिना स्वप्न के नींद में विचार न होने के कारण वहाँ मैं नहीं होता है।

हमारे याद ही हमें 'हम ही मैं' ऐसे प्रदर्शन करता है । मुझे देखनेवाला और सांसारिक चीज़ों को दिखाई देनेवाली चीज़ों के रूप में प्रदर्शन करता है ।

किसी एक सोच को लेने पर उसमें दो भाग होते हैं । एक देखनेवाला दूसरा दीख पड़नेवाली चीज़ है ।

(72)

इन दोनों अंशों के बिना सोच नहीं है । यह देखनेवाले के रूप में हमें दिखाता है । दिखाई देनेवाली चीज़ के रूप में दुनिया को दिखाता है । दोनों एक ही सोच में समानेवाले भाग हैं ।

हम सोते समय स्वप्न देखते हैं । सोते समय होनेवाले सोच का नाम ही स्वप्न है । हमारे स्वप्न का पूरा पूंजी हमारा सोच ही है ।

हमारे स्वप्न में देखनेवाला ''मैं'' होगा । दीख पड़ने वाला संसार होगा । दोनों पूरा का पूरा हमारे सोच ही हैं ।

स्वप्न में हम देखते हैं कि हम अस्वस्थ हैं । हमारे रिश्ते हमें अस्पताल ले जाते हैं, कई वैद्य हमें चिकित्सा देते हैं । यहाँ अस्वस्थ मैं माने हमारे सोच ही है । हमारे रिश्ते, अस्पताल, वैद्य सब हमारे सोच ही हैं। सोच ही सब के रूप में है ।

हम अपने प्रतिदिन के जीवन के यथार्थ में जब भाग लेते हैं तब भी ऐसा ही होता है । हमारा सोच ही हम पर और संसार पर प्रतिबिम्बित होकर हमें दिखाता है । संसार को भी दिखाता है । हमें मैं रूपी देखनेवाला और संसार को दिखाई देनेवाली चीज़ के रूप में दिखाता है ।

हमारे सोच के और एक अंश को भी हमें समझ लेना चाहिए ।

हमारा सोच अचल चित्र के जैसे (Still Photo) एक ही सोच के रूप में न स्थित होता है ।

धूमेनावृत धूम के जैसी

प्रत्येक क्षण में आनेवाले नये नये धूम के जैसे –

(73)

हमारे सोच और प्रत्येक क्षण में होनेवाले नए–नए सोच आते रहते हैं ।

सिनेमा फिल्म के पक्ष में देखने पर प्रत्येक फिल्म में एक दृश्य खण्ड खण्ड में अलग होता है । वह क्रम में आते समय अलग–अलग, खण्ड–खण्ड दृश्य के जैसे न होकर वह एक जारी रखनेवाली घटना के समान दीख पड़ती है । किसी एक दृश्य ही (Still) स्थिर दृश्य होने पर चित्र न क्रियान्वित होकर रूक गया है – ऐसा अर्थ होता है ।

हमारे सोच सिनेमा फिल्म के जैसे क्रम से आता रहता है । किसी एक गड़बड़ से स्टिल (Still) दृश्य ही आने के जैसे हमारा सोच कभी भी स्टिल–दृश्य न देता है । हर एक क्षण में सोच नए–नए आ जाते हैं ।

पर नए–नए आनेवाले सोच में होनेवाला दर्शक नाम 'मैं ' ही – न बदलनेवाला ' मैं' के रूप में–हम सोचते हैं ।

देखेनेवाले को सृष्टित सोच जैसे प्रत्येक क्षण में नया–नया होता है वैसे ही उससे सृष्टित किया गया दर्शक नामक मैं भी

– प्रत्येक क्षण में नया–नया ही हो सकता है ।

पर हम ऐसे नहीं सोचते हैं । हम सोचते हैं कि एक ही 'मैं' शाश्वत होकर वैसे ही रहता है । हमारा सोच हमें एक नाम–रूपवाला व्यक्ति के रूप में दिखाता है । इससे हम अपने को नाम रूपवाला व्यक्ति समझते हैं ।

(74)

हमारे सोच दिखानेवाले सब दृश्य तात्कालिक हैं । वह ही नहीं हैं । दिखाई देनेवाली चीज़ से संबन्धित एक प्रकार का विपरीत अंश है ।

वैसे होने पर ?

हमें मालूम है कि पाठशाला में छात्रों को परीक्षा में अंक दिया जाता है । याने मान लीजिए कि गणित में 80, अंग्रेजी में 60, तमिल में 90, ऐसे अंक दिया गया है । उसका अर्थ क्या है ?

80 माने 80 को ही नहीं संकेत करता है, 80 माने 100 पर 80 हैं 90 माने 100 पर 90 हैं ऐसे संकेत करता है । बाह्य रूप में 80 कहने पर भी वह 100 भाग को दूसरी ओर से दिखाता है ।

– इसी प्रकार, मैं नामक दर्शक, दिखनेवाली चीजों को उपयुक्त दर्शक '' मैं '' के रूप में रहता है । यानी–आप अपनी माँ को माता के रूप में दर्शन करते समय, आपको उनके पुत्र के रूप में मानते हैं ।

मेरे बच्चे को बेटे के रूप में देखते समय, मुझे मैं उसके पिता के रूप में मानता हूँ ।

ऐसे दिखाई देनेवाली चीज़ से एक प्रकार का विपक्षीय बन्धन का अंश हम अपने आपको अपने सोच के द्वारा बनाते हैं ।

हम जिस परिस्थिति के पक्ष में हैं उससे संबन्धित सोच प्रत्येक क्षण में नये–नये रूप में होने के कारण –

(75)

उससे संबन्धित 'मैं' रूपी अंश, प्रत्येक क्षण में नये – नये बनते हैं । हमारे सोच दिखाने वाला – 'मैं' तात्कालिक है ।

हमारी यथार्थ स्थिति हमारे सोच के वश में नहीं है । बन्धन में नहीं है । पर हमारा सोच हमें एक सीमा के अन्तर्गत होने के जैसे दिखाता है । इससे ही ऐसे सोचते हैं कि हम अपने आपको एक सीमा के बीच के, एक स्वभाववाले के जैसे हैं ।

ऐसे हम अपने को एक सीमा के अन्तर्गत न रखें तो, हम हमेशा सीमाओं तथा स्वभावों के बीच न होकर रहते हैं ।

सीमारहित, अवर्णनीय, अखण्ड ही हमारा स्वाभाविक अंश है ।

यहाँ हमें इसे समझना है कि ' मैं ' तात्कालिक है दर्शन देनेवाली चीज़ का अंश है, उत्पन्न होकर गायब होनेवाला है, परिवर्तन होनेवाला है ।

ममकार माने मेरा – ऐसा अर्थ है ।

किसी एक चीज़ को यह मेरा है ऐसे बताने पर वह ममकार है ।

मेरा घर है । मेरा बच्चा है । ये सब ममकार है । सिर्फ़ अपने आप को अकेला दिखाना अहंकार है । दूसरों से हमें अलग करके अकेला दिखाना अहंकार है।

(76)

पर हमें किसी एक चीज़ से संबन्ध दिखाना ममकार है ।

सचमुच ''मैं'' एक निरर्थक भावना है । ममकार ही उसको अर्थ देता है । एक स्वभाव देता है ।

आम तौर पर अहंकार माने अहंकार या अहं भाव, घमण्डी सोच जैसे माना जाता है ।

अहंभाव स्थिति में एक खुद सबसे श्रेष्ठ है या अपने समान कोई नहीं है रूपी अहंकार में हैं ऐसे रख लें । क्या यह अहंकार है ?

अहंकार के जैसे दीख पड़ने पर भी यह अहंकार नहीं है ।

अपने को गर्व सहित एक योग्यता के साथ देखने की एक स्थिति होने से यह भी ममकार ही है ।

अहंकार एक समस्या की स्थिति नहीं है । वह ''खुद'' रूप में अपने को भावना करने की एक साधारण स्थिति है ।

'' हम '' किसी को पकड़ने की स्थिति, साधारण स्थिति न होकर समस्यावाली एक स्थिति बन जाती है ।

'' हम '' किसी को पकड़ते समय, हम उसे नहीं पकडते हैं । वह ही हमें पकड़ता है ।

तमाशा के लिए एक कहानी कहेंगे :–

दो दोस्त नदी के किनारे खड़े थे । नदी में एक बोझ चलता था ।

(77)

वह कौन सा बोझ है ? उस में क्या होगा ? इसके बारे में जो दूर खड़े रहे थे उनको मालूम नहीं है । फिर भी उस बोझ पर इच्छा रखनेवाला एक मनुष्य नदी में कूदकर तैरते उस बोझ को छूने पर ही मालूम हुआ कि वह पानी में फँस आया एक भालू है । भालू भी नदी को पार करने के लिए उसे पकड़ लिया । वह लड़खडाता है ।

दूर पर जो दोस्त था वह चिल्लाकर कहता है, '' लाने के लिए बहुत कष्ट होने पर उस बोझ को छोड़ दो'' ।

उसके लिए वह जवाब देता है । ऐसे –

''बोझ को मैंने नहीं पकड़ा, बोझ ही मुझे पकड़ लिया है '' ।

ममकार में घटनेवाली भी यही है ।

हम घर या चीज़ को पकड़ लेना माने – वे हमें पकड़ना है । हमने जिसे पकड़ लिया उनके स्वभाव हमें मिलते हैं ।

हम 'घरवाले' बनते हैं । हम चीजोंवाले बनते हैं ।

सभी चीजें बिना अर्थ के 'मैं' नामक हमें चीज़ का स्बभाव देती है ।

उसी समय निर्जीव चीज़ों को हम और एक ढ़ंग से जीव देते हैं ।

(78)

घर – एक जड़ पदार्थ है । '' मेरा घर '' कहते समय घर को जीव आता है ।

ऐसे ही हमारी सभी मनोभावनाएँ हैं। वे सब आने जानेवाली हैं । किसी को हम मुख्यत्व देते समय उनकी गति और दौड़ में रूकावट होता है ।

हमें होनेवाली खुशी की भावना को – ' हमें चाहिए ' सोचकर पकड़ने से, हमारी चिन्ता की भावना को हमें नहीं चाहिए सोचकर पकड़ने से, ये भावनाएँ जीवन्त होती हैं । स्वभाव में दौड़कर गायब होनेवाली ये सब भावनाएँ दौड़कर गायब न होकर जीव पाकर रहने लगती हैं ।

उसी प्रकार '' मैं '' नामक साधारण स्थिति का अंश भी 'होनेवाला' नामक ममकार सहित बदलता है ।

हम '' होनेवाला '' होने तक हमारे प्रवाह रूपी दौड़ स्थगित होता है ।

सब प्रवाह होकर दौड़ते समय '' मैं '' भी प्रवाह बनकर दौड़ता है ।

हमारी भावना–प्रवाह को '' मैं '' रूपी सोच, रूकावट नहीं है । वह भी उस प्रवाह में मिलकर प्रवाह बनता है । उस प्रवाह में '' मैं '' के लिए स्थान है । एक दूसरे के वे विपरीत नहीं हैं ।

पर '' मैं '' ''होनेवाला'' बनने पर प्रवाह में रूकावट होती है ।

(79)

''रखनेवाला'' उस प्रवाह का रूकावट बनकर रहता है । प्रवाह भी उस रखनेवाले के कार्य का अड़चन बनता है ।

प्रवाह के बीच '' रखनेवाले'' को अपने को स्थिर रखने के लिए संग्राम करना चाहिए ।

'' रखनेवाला '' घुलकर सिर्फ '' मैं '' ही होने की स्थिति में – प्रवाह में किसी प्रकार का अड़चन नहीं होता है । इसका क्या अर्थ है ?

'' मैं '' यह भाव आता और प्रवाह में जाकर ओझल भी होता है ।

हमारे मन की भावनाएँ परिस्थिति के स्वभावानुसार आकर, प्रवाह में जाकर ओझल होती हैं ।

किसी भावना को हम पकड़कर उसे परिवर्तन करना चाहें या उसे लगातार स्थिर रखने के लिए प्रयत्न करने पर ––

'' रखनेवाला'' बनता है । जीवन अपनापन बनता है । प्रवाह में अड़चन बनता है ।

'' रखनेवाला '' कैसे बनता है – इसका एक पहलू हमने देखा है । उसकी दूसरी पहलू भी देखें ।

हमें चिन्ता होती है । वह मेरी चिन्ता है – ऐसे लेने की स्थिति में रखनेवाला आ जाता है । पर हम अपनी चिन्ता को प्रत्यक्ष अपनी चिन्ता के रूप में न लेते हैं । उसे भी गुप्त रूप में ही लेते हैं । यानी –

(80)

हमें चिन्ता होती है तो – '' चिन्ता रहित की स्थिति चाहिए '' ऐसे सोचते हैं ।

''बेफ़िक्र की स्थिति चाहिए '' की स्थिति में ''हमें और चिन्ता को सम्बन्ध है'' – ऐसे रहस्यपूर्ण विचार बना लेते हैं ।

सुख होता है तो 'बिना सुख की स्थिति' या सुख की स्थिति शाश्वत होने के विचार करते हैं ।

इसके द्वारा भी हम सुख को गुप्त रूप में हमारे साथ बाँधते हैं । आम तौर पर –

'' बिना चिन्ता की स्थिति '' और '' निरन्तर सुख की स्थिति '' ये हमारी प्रतीक्षा की स्थितियाँ है ।

यह हमारी प्रतीक्षा की स्थिति है कि भविष्य ऐसे ही होना है । ऐसे ऐसे भविष्य में होना है – यह प्रतीक्षा ही – '' रखनेवाला '' बनने का कारण बनता है । रखनेवाला माने भविष्य पर होनेवाली एक प्रतीक्षा ही है । वह भविष्यकाल यानी बिना चिन्ता की स्थिति ही है । वह भविष्यकाल यानी बिना चिन्ता की स्थिति के रूप में लम्बी सुख की स्थिति के जैसे कार्यान्वित होता है ।

(81)

आम तौर पर – भविष्यकाल की स्थिति पर लेनेवाला लगन ही ''रखनेवाला '' अगर हम ''रखनेवाले'' को चले जाना है – ऐसे सोचने पर भी, वह भी एक भविष्य स्थिति पर लेनेवाला लगन है ।

वह '' रखनेवाले '' को और भी मजबूत करा देता है । इसलिए बिना रखनेवाले की स्थिति चाहिए – ऐसे सोचने से समस्या को हल नहीं कर सकते हैं ।

हर एक चिन्ता से छूटना चाहते हैं ।

यही हमारा स्वभाव है । चिन्ता एक पीडा है, वह पीड़ा ही – हमें पीडा से निवृत्ति पाने की प्रेरणा देगी । ऐसे ही सुख का मीठा स्वभाव,

– वह और भी अधिक होना रूपी सोच को पैदा करता है ।

ये सब हम अपने आप योजना बनाकर नहीं करते हैं । हमारे अनजाने ही करते हैं । यही हमारा स्वभाव है ।

'' दुख दूर होना है '' व ''सुख निरन्तर रहना है'' – ऐसे अनजाने ही हम सोचने के कारण ही '' रखनेवाला '' भी हमारे अनजाने बनता है ।

(82)

'' रखनेवाला '' खुद बनता है । स्वाभाविक रूप में बनता है । खुद आकर खुद चला जाता है । हमें उसे परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है । उसके उत्पन्न होना और उसके ओझल होने के बारे में हमें रूचि रखने की ज़रूरत नहीं है । वैसे न होकर हम रूचि दिखाएँ तो – वही – रखनेवाले को जीव व बल देता है ।

यह हमारा स्वभाव है कि किसी एक परिस्थिति में हमें चिन्ता होती है। वह स्वाभाविक है । हमारे अनजाने ही ऐसा दूसरा विचार भी आता है कि उसके न होना है ।

– वह संग्राम के जैसे होने पर भी वह भी हमारे अनजाने ही बनता है। स्वाभाविक रूप में बनता है । प्राकृतिक रूप में बनता है ।

ऐसे – घटनेवाली घटनाओं को प्राकृतिक और खुद होनेवाली रूप में स्वीकार कर लें तो

– भविष्य पर हमारी प्रतीक्षा और रूचि घट जाती हैं । अपने आप चलनेवाली इन घटनाओं में ये सब अपने आप प्रवहित होते हैं कि भविष्य में ऐसे न होना है या होना है – ऐसे हमें बिना प्रयत्न करके उनकी गति में छोड़ देना है ।

(83)

सब पवित्र गड्.गा के रूप में प्रवाह करके दौडते हैं । उनके मार्ग में वे प्रवाह करके दौड़ने से – वे अपने आप शुद्ध होकर, नये तेज, प्राप्त कर लेते हैं । पवित्र ही रहते हैं ।

अगर हम '' रखनेवाले '' को हटाना चाहते हैं तो वह अनावश्यक संग्राम को निमंत्रण करना ही है ।

सब खुद आकर अपने आप प्रवाह करने अनुमति देने पर ' रखनेवाले ' सहित सभी अपने आप दौड़कर, खुद पुनीत होते हैं ।

अपने आप हमें संग्राम करके पुनीत करना संभव नहीं है ।

हमारा भावनामन अपने आप को सुधारने के लिए किसी संग्राम में भाग न लेकर शांतिपूर्ण स्थिति में होने पर – हमारे चाह को जानकर हमारे अन्दरमन और आन्तरिक मन की सहायता के लिए आते हैं ।

हमें सुधारनेवाली दैविक क्रिया कियान्वित होने लगती है ।

हमारी भावनाओं को सुधारने के लिए हमारा आन्तरिक मन सदा तैयार रहता है ।

(84)

हम अपने आप कोशिश करके संग्राम न करके खामोश रहेंगे तो हमारी सभी भावनाएँ खुद सुधार होती हैं । उस क्रिया को आन्तरिक मन ही स्वीकार करता है । सुधार हो जाता है । हम 'रखनेवाले' को सुधारने के लिए न प्रयत्न करके खुद बनाए हुए रखने वाले को प्रवाह करने अनुमति देने

पर – बाकी के साथ 'रखनेवाला' भी प्रवाह होता है । 'रखनेवाला' परिवर्तित होकर, प्रवाह होनेवाले के रूप में प्रवाह होता है ।

जो प्रवाह होता है उसे 'रखनेवाला' नहीं बता सकते हैं । क्योंकि, वह दूसरे परिमाण में आ गया है ।

सबको प्रवाह करने हम अनुमति देते हैं । मनोभाव से किसी जिम्मेदारी को न लेने पर –

''न्यायपूर्ण बिना जिम्मेदारी '' का भाव ही मुक्ति है । यही ज्ञान–स्थिति है ।

पकड़ लेना – माने मुक्ति का विरोध भाव है । सबको प्रवाह करने अनुमति देना–माने पकड़ लेना नहीं है । संग्राम करके दूर करना भी नहीं है । वह प्राकृतिक क्रिया है । स्वयं क्रियान्वित होनेवाली क्रिया है । इस स्थिति में – मुक्ति पाए एक मनुष्य किसी को न पकड़ लेता है ।

(85)

अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति और श्रेष्ठ अनुभवों पर उससे कैसे पसंद कर पकड़ ले सकते हैं ?

आध्यात्मिक अपूर्व शक्तियों पर किसी को इच्छा होने के पक्ष में, ध्यान से वे उसके लिए परिश्रम करते समय – निश्चय वे ऐसी शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं ।

उस पर जिसको रूचि है उसके लिए परिश्रम करें । पर वैसे अपूर्व शक्ति और मुक्ति के प्रत्यक्ष संबन्ध नहीं हैं । मुक्ति प्राप्त किए एक व्यक्ति को खुद ऐसी शक्तियाँ हो सकती हैं । पर –

वैसी शक्तियों को प्राप्त करने पर भी वे उसमें ध्यान नहीं देंगे । मन की शुद्धता और मुक्ति का क्या संबन्ध है ? हम इसे सोचकर दुखी होते हैं कि हमारा मन ठीक होकर शुद्ध बनने के बाद ही ज्ञानमुक्ति हमें प्राप्त होती है । इसलिए हमारे मन और भावना को शुद्ध करने के प्रयास में लगते हैं । ऐसे सोचते हैं कि हमारे बुरे स्वभावों को अपने मन तथा हृदय से हटाना है । उनको निकालने के बाद ही ज्ञान मुक्ति की प्राप्ति होगी – ऐसे

हम निर्णय करके विश्वास रखते हैं । कई लोग ऐसे हमें कहते आने के कारण – हम उसे सच के रूप में मान लिए हैं ।

(86)

पर वह सच नहीं हैं । वह विपरीत रहता है । मन की शुद्धता मुक्ति के बाद ही मिलती है । मुक्ति के पहले एक मनुष्य कितने ही प्रयास करने पर भी उसका स्वभाव शुद्ध होने की संभावना नहीं है ।

शुद्ध करने के लिए प्रयास करना शुद्धता न लाता है । उसी समय मुक्ति प्राप्त किए एक मनुष्य का मन अपने दिनचर्या के द्वारा ही – अपने सारे स्वभावों को पुनीत करता है ।

पुनीत प्राप्त करना मुक्ति के बाद ही आ सकता है । वैसे ही आता रहता है ।

एक छोटा सा उदाहरण लेंगे । हमने देखा है कि रेल एक पटरी से दूसरी पटरी पर बदलती है । एक पटरी पर दौड़ी आई रेल को दूसरी पटरी पर बदलने के लिए पहले इंजन ही दूसरी पटरी पर प्रवेश करता है । इंजन आगे नई पटरी पर चलते–चलते इंजन के साथ पेटियाँ भी एक–एक करके नई पटरी पर प्रवेश करती हैं । इंजन नई पटरी पर प्रवेश करना ही मुक्ति है । उसके बाद पेटियाँ एक–एक करके नई पटरी पर आना माने सभी स्वभाव नए बनकर नए परिमाण प्राप्त करना ही है ।

(87)

मुक्ति प्राप्त करने के बाद किसी का मन और भावना भी नये परिमाण में प्रवेश करके कालक्रम में ठीक तेज़स होता है । ये सब खुद चलते हैं । प्रयास नाम के वास्ते भी नहीं होता है ।

एक फूल कली से एक एक दल से विकसित होता है । सभी दलों के विकसित होने के बाद ही उसका सुगन्ध बाहरी लोगों को मालूम होता है ।

पर मुक्ति प्राप्त किए एक व्यक्ति के पक्ष में देखें तो मुक्ति प्राप्त किए क्षण में ही वे दूसरे परिमाण को आ जाते हैं । चाहे उसका नया परिमाण

दूसरों को समझ में आता है या नहीं आता है ।

उसके परिमाण – बदला बदला ही है ।

फूल विकसित होने आरम्भ होना, आरम्भ होना ही है । इंजन का दूसरी पटरी में प्रवेश करना – प्रवेश करना ही है ।

ऐसे दूसरे परिमाण को परिवर्तन होने का विवरण उसके पक्ष में बदलते ही तुरन्त मालूम होता है । क्योंकि उनके पक्ष में उनकी सभी शंकाएँ दूर होती हैं । उनकी सभी माँग एक निर्णय पर आती हैं ।

यह मुक्ति एक अनुभव नहीं है । सचमुच यह सभी अनुभवों से पानेवाली मुक्ति ही है ।

(88)

सभी अनुभव तात्कालिक हैं । वे स्थिर नहीं हैं ।

पर मुक्ति शाश्वत है ।

क्या मुक्ति और सहज–समाधि दोनों एक ही है –

ऐसे कैसे ले सकते हैं ?

ध्यान – समाधि के समय एक अपने आप को भूल जाने की स्थिति पर जाते हैं ।

पर सहज – समाधि ऐसी नहीं हैं । हम सभी कार्यो में लग जाने पर समाधि की स्थिति में ही होते रहना सहज समाधि है । सिर्फ मन ही शांतिपूर्ण स्थिति में आनन्द में रहता है । वह शांतिपूर्ण स्थिति में होते ही हम अपने दिनचर्या को देख सकते हैं ।

आध्यात्मिक अनुष्ठानों में ज्यादा लगन रखनेवालों में कई इस सहज स्थिति में ही मन को स्थिर रखकर अपना दिनचर्या किया करते हैं ।

क्या यह सहज समाधि ही मुक्ति है ?

नहीं । सहज समाधि में भी हम अपने मन को काबू में रख लिए हैं । हमारे प्रयासों तथा आदतों के अनुसार उस सहज स्थिति को बिना क्षितिलता के रखना हमें आसान होगा । पर वह भी हमारे प्रयासों से संबन्धित मन का अंश ही है ।

मुक्ति माने हमारे मन को वैसे ही स्वतन्त्र रूप में स्वीकार करना है । हमारे मन की सारी क्रियाओं को वैसे ही स्वीकार करना है ।

(89)

ऐसे मान लीजिए कि हम अपने बच्चे के साथ रेल यात्रा करते हैं । घंटों गाड़ी में बैठे रहने पर भी न मालूम है कि गाड़ी कब रवाना होगी । बच्चा अक्सर ऐसे कहकर सताता है कि गाड़ी कब रवाना होगी ? हम उसे तसल्ली देने के वज़ह से कहते हैं कि '' गाड़ी को घसीट दो गाडी चलने लगेगी '' ।

हमारी बातों को सच्ची मानकर बच्चा हमारे पास ही खड़े होकर गाडी की सीट को पकड़कर धकेलता है ।

उस समय गाड़ी भी रवाना होती है । बच्चा सोचता है कि अपने धकेलने के कारण ही गाड़ी चलती है ।

हम भी बच्चे को प्रोत्साहित कराने केलिए पेरित करते हैं कि 'न छोड दो' ।

थोडी देर में पासवाला स्टेशन आता है । हम बच्चे से कहते हैं, 'न धकेल दो, यह कौन सा स्टेशन है देख लें ' । बच्चा भी गाड़ी को धकेलना छोडता है । गाड़ी भी रूकती है । फिर से बच्चे से गाडी को धकेलने कहते हैं । बच्चे के गाड़ी धकेलने पर गाड़ी फिर से रवाना होकर चलती है ।

पर थोड़ी देर में गाड़ी अपने आप चलती है । अपने से धकेलने के कारण नहीं है – ऐसे बच्चा जानता है । ऐसे समझते ही बेकार धकेलने के प्रयास में बच्चा नहीं लगता है । ऐसे –

हमारा मन अपने स्वभावानुसार अपनी गति में चलती है – इसे समझने की स्थिति में ही –

हम उससे छुटकारा पाते हैं । मुक्ति पाते हैं ।

(90)

मन एक जड़स्वभाववाला यन्त्रगति रूपी एक क्रिया है –इसे जान लेने की स्थिति में हम उससे छुटकारा पाते हैं ।

जब हम उस मन की क्रिया में संबन्धित या विपक्षी होकर संपर्क रखते हैं और उसे पकड़ने लगते हैं तो जड़–क्रिया रूपी मन की गति जीवन्त गति बनकर संग्राम में फँसता है ।

अगर हम उसे खुद चलनेवाली एक यंत्रगति रूपी क्रिया मानकर उसे अपनी गति से कार्यान्वित करा दें तो वह एक उपयोगी यन्त्र रूप में अपनी गति में चलने लगेगी ।

हमारे मन को खुद चलनेवाली एक यन्त्र गति की क्रिया के रूप में देखने पर ही मनोगति को हम एक साथ स्वीकार करते हैं ।

' मैं ' सहित सारी गतियाँ एक साथ मनोगति के रूप में देखकर वे अपने आप क्रियान्वित होकर प्रवाह करने अनुमति देने की स्थिति में हम अपनी मुक्ति में स्थिर होते हैं ।

मुक्ति माने हमारी किसी में न स्थगित होने की अवस्था है ।

हम अपने इच्छा या द्वेष प्रकट करने से एक जगह पर ठहरते हैं ।

(91)

हम अपनी ठहरने की जगह को खाली करके शुद्ध प्रवाह की गति में प्रवहित होना ही मुक्ति है ।

इस मुक्ति को –

क्या क्षण में प्राप्त कर सकते हैं ?

ऐसे प्राप्त करनेवाली मुक्ति, मुक्ति न हो सकती है ।

मुक्ति माने किसी को न प्राप्त करना है ।

जड़ चीज़ों को ही प्राप्त कर सकते हैं ।

मुक्ति एक जीवन्त गति है । वह प्राप्त होनेवाली नहीं है । मुक्ति को ही नहीं, किसी को प्राप्त किए बिना क्रियान्वित होना ही

– मुक्ति की गति है ।

.....

पीछे का विवरण :–

इसके सभी अध्यायों को पुनः पुनः पढने से ही वे सच में क्या बताते हैं? इसे समझ सकते हैं । मुक्ति प्राप्त किए एक व्यक्ति से भी इससे संबन्धित शंकाओं को प्रत्यक्ष पूछकर स्पष्ट समझ लेने से भी '

आप इस ज्ञान मुक्ति को आसानी से पा सकते हैं ।

(92)

पुस्तक की प्रतियों के लिए

तिण्डुक्कल	:	वाळग वळमुडन पुस्तक केन्द्र – 0451–2423311
चेन्नै	:	श्री विद्या बुक सेन्टर, मयिलाप्पुर
		044–24611345, 24511141
तिरूच्ची	:	Zen Sangh अन्दर पुस्तकालय – 0431–2701239
		इन्टर नेशनल बुक्स – 0431–2703743,2711599
कोवै	:	विजया पतिप्पगम – 0422–2394614, 2382614
मदुरै	:	डा.आर. शरवणकुमार – 9443471456
		सर्वोदय इलक्किय पण्णै – 0452–2341746
सेलम	:	श्री.एन.कैलासम – 9443290559
नेल्लै	:	अरूळ नन्दी शिवं – 0462–2339692
तिरूवण्णामलै	:	श्री शेशाद्री स्वामिगळ आश्रमम

लेखक के तात्कालिक ग्रंथ

1.	Don't Delay Enlightenment	रू. 100/–
2.	ज्ञान विडुतलै	रू. 50/–
3.	कवलैकलुक्केल्लाम तीर्ऊ	रू. 70/–

पहले ग्रंथ

1.	आत्म ज्ञान रहस्य Xerox	रू. 30/–
2.	अनुष्ठान आन्मीकम् Xerox	रू.120/–

यह एक पुस्तक नहीं है ।

यह एक आमन्त्रण ही है ।

ज्ञान मुक्ति पाने अपने अन्तिम कदम न रख सकनेवाले आध्यात्मिक साधकों के लिए एक आह्वान् है ।

उसके साथ .....

ज्ञान मुक्ति के लिए प्रयास करनेवाले आध्यात्मिक साधक कैसे गलत मार्ग पर छोडे गए हैं – ऐसे ध्यान आकर्षण करनेवाला एक विवरण के रूप में भी यह बन गया है.....!